

“अगर आमने सामने बैठकर संभाषण किया जाय तो एक बात और स्पष्ट होती है। पान बेचने वाला भी ऐसी बात या विचार बेच सकता है जो विज्ञान भवन में बैठकर बात करनेवाले के भेजे में पैदा ही नहीं होते। कभी-कभी एक भेड़ चरानेवाले के पास भी कहने को कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिन्हें सुनकर आदमियों को चरानेवाले की शकल भी चक्कर में पड़ सकती है।”

...और यही ‘आमने सामने’ की ऊपर से देखने में सादी परन्तु भीतर से बहुत गहरी व्यंग्य-रचनाओं की विशेषता है। लेखक बड़ी कुशलता से अपने विषय पर चोट पर चोट करता और पाठक को गुदगुदाता चलता है। पुस्तक की रचनाएं पाठक को गहरा आत्मसंतोष प्रदान करती हैं।

22

268
कथना

6568
249168

...

...

आमले सामने

मालीराम शर्मा

मूल्य : आठ रुपये (8.00)

प्रथम संस्करण 1975 © मालीराम शर्मा
SAMNE (Satire) by Mali Ram Sharma

अपनी तरफ से ^{कहानी} ~~अपनी तरफ से~~

बातचीत अगर हो तो भ्रामने-सामने ही हो, ठीक रहता है, खुलकर बात कह भी दो और सुन भी लो। किसी वकील के जुरिये या किसीको मध्यस्थ बनाकर बातचीत जाए तो बात इतनी कारगर नहीं होती। वकील लोग कई बार पूरा 'म्यू पाइण्ट' पेश नहीं कर पाते।

राजनयिक लोगों की भाषा में इसे 'डाइरेक्ट डिप्लोमेसी' की शैली कहते हैं। जब दो राष्ट्र बिना किसी मध्यस्थता के बात करते हैं तो शैली हो जाती है द्विपक्षीय बातचीत की, वाइलेटरलिज्म की। इन सबसे हटकर जब स्थितियों के बीच भ्रामने-सामने बात होती है, तो शैली हो जाती है परिसम्वाद की।

सम्वाद किसीसे भी हो सकता है, पनवाड़ी से, भेड़ चराने वाले से, बाल काटने वाले से, ऊट चराने वाले से, वही-वड़े की घाट बेचने वाले से। इसके लिए रातों हो तो एक ही होनी चाहिए, विश्वविद्यालय से प्राप्त किसी डिग्री की, या किसी प्रकार के लाइसेन्स या परमिट की जरूरत नहीं।

अगर भ्रामने-सामने बैठकर संभाषण किया जाये तो एक बात और स्पष्ट होती है। पान बेचने वाला भी ऐसी बात या विचार बेच सकता है जसे दिग्गज भवन में बैठकर बात करने वाले के भेजे से पैदा ही नहीं होती। कभी-कभी एक भेड़ चराने वाले के पास भी कहने को कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिसे सुनकर मादमियों को चराने वाले की भवत भी खबर में पड़ सकती है। परन्तु इसे मानने को कोई तयार नहीं होता। कारण घायब यह हो सकता है कि ये लोग घास और कान दोनों ही बन्द रखते हैं। कान तो तब मूलते है जब रेडियो खुलता है, रेडियो के जरिये ही कान में बात पहुँचे। बाकी मोह में कोई रीला-रफा करे तो वह सुनने लायक नहीं होता। एक बची-बंघाई मान्यता है। इसलिए बातों में जानबूझकर रुई दवाई जाती है।

घाँसें तो उस मूरत में खुलें जब किसी घातकार में निगा हूमा हो, किसी किताब में लिखा हूमा हो। वैसे भीत पर लिखा या मनलिया पढ़ने की घादन नहीं। दुनिया अपने-आपमें एक बहुत बड़ी सुसी किताब है। यह बात बंधो-बंधाई मान्यता से भेल नहीं खाती। मान्यताएं व मर्यादाएं कोई घाज को खीज

नहीं, गुणों से चली आ रही है। इसी बिना पर हर मान्यता पवित्र है। पवित्रता को नष्ट करना एक कुफ्र है।

कई बार एहसास होता है कि कुफ्र तो हो रहा है परन्तु ज्यों-ज्यों सम्वाद आगे चलता है तो एक बात स्पष्ट हो जाती है। कुफ्र कहाँ है, पता चल जाता है। सबसे बड़ा कुफ्र तो यह है कि हम बात की नवालिटी नहीं देखते, बरन देखते हैं बात करने वाले की 'कवान्तिफिकेशन' तथा उसकी पूँछ की सम्वाई। एक पन-वाड़ी जब एक पान के साथ ज्ञान की बात बोलता है, तो हम मूक उछालने लगते हैं कि यह कैसे हो सकता है। उसके पास ज्ञान देखने का साइसेन्स नहीं है और उसका सारा का सारा ज्ञान ही 'कोप्ट्रावैण्ट' है।

सारी समझ एक 'ए कैटेगरी' के ठेकेदारों को ठेके पर उठा दी गई। ऐसी हालत में वेगाराम की दरखास्त को कौन सुने ? दरखास्त फाइल कर दी गई। 'वन वे ट्रेफिक' का नियम बड़ी सख्ती से पालन हो रहा है।

चलो, कुफ्र क्या है, काफिर कौन है, एक बहस हो सकती है।

अगर बहस की बात है तो फिर भी इसके लिए सम्वाद हो जाये आमने-सामने बैठकर। वाद की बातें वाद में देखी जाएंगी। बहस अभी खतम होने षोड़े ही जा रही है। बहस तो लम्बी चलेगी, सारे मुद्दे आज ही हल होने षोड़े ही जा रहे हैं। बहस चालू है।

खैर, इसी बीच में श्री रामनरेश सोनी को धन्यवाद दे दूँ क्योंकि बहस के दौरान में कभी-कभी जरूरी बातें दिमाग से उतर जाया करती हैं। सोनी ने पाण्डुलिपि तैयार की, घण्टों बहस की, एक ओबजर्वर की हैसियत से सुनते रहे और कभी-कभी कान में बड़े काम की बातें भी कहीं। लगते हाथ राजपाल एण्ड सन्ज के श्री ईश्वरचन्द्र को भी याद करना चाहूंगा। उनसे चलते में बातें हुई। वे ही चालू बातें, चालू मुहावरे में, जो कि ट्रेन में, बस में बक्त काटने की गर्ज से एक अनजान व्यक्ति दूसरे अनजान व्यक्ति से करता है। वाद में बात और व्यक्ति दोनों ही भुला दिए जाते हैं। पर चालू बातों में किताब चालू हो गई, यह एक छोटा-सा कमाल है। इसके लिए धन्यवाद किसको देना चाहिए, मुझे या उन्हें ? इसपर फिर एक नई बहस खड़ी हो सकती है, इसलिए मैं ही धन्यवाद दे दूँ उनको तथा उनके ज़रिये प्रकाशक को।

बीकानेर (राजस्थान)

—मालीराम शर्मा

2687
कईना

क्रम

कुछ बातें जो किताबों में नहीं होती	६
कई कुत्ते कुत्तों की भीड़ नहीं मरते	२३
नाम में क्या घटा है	३०
बिल्ली ने आत्महत्या कर ली	३७
सब एक हो जाओ	४६
जब ब्रह्मा बागी हो गये	५१
भोमियो जी का मंदिर	६०
कुछ सवाल जो मुझमें सुलभतें नहीं	८१
एक लघु यात्रा	६०
भीड़ घंघी होती है	६६
बेगाराम की चिट्ठी प्रोफेसर के नाम	१०२
धानू की सम्यता	११३
धामने सामने	११६

कुछ बातें जो किताबों में नहीं होतीं

डाक्टर अग्रवाल आए तो साय में दो-चार और सज्जन थे। ये स्थानीय कालेज में लेक्चरर थे और मुझे इनसे कई बार मिलने का मौका भी मिला था। व्यक्तिगत भी और कालेज में भी। परन्तु डाक्टर अग्रवाल में मिलने का यह पहला ही मौका था।

मिटते ही मुझे परिचय में बतलाया गया कि डाक्टर अग्रवाल स्थानीय कालेज में भौतिक शास्त्र के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं और आप लखनऊ से पधारें हैं। मैंने औपचारिकता का निर्वाह करने का पूरा यत्न किया और यह कहना नहीं भूला कि आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। मुझे अपना परिचय देने की नौबत ही नहीं आई। उनके साथियों ने शायद पहले ही उन्हें 'श्रीफ' कर रखा था।

"तो, डाक्टर साहब तो शायद अभी आए हैं?" मैंने मुलाकात में आत्मीयता जताने के लिए 'टेबल्ट बूक मेमंड' से बात चालू की।

"पिछले ही हफ्ते।" डाक्टर साहब ने लखनवी मुस्कान के साथ जवाब दिया।

"पर मुझे तो डर है कि लखनऊ के माहौल में पला हुआ व्यक्ति राजस्थान की धूल को बर्दाश्त भी कर सकेगा?" मैंने आशंका व्यक्त की।

"आप लखनऊ गए हैं कभी?" मुस्कान के साथ सवाल हुआ।

"लखनऊ जाने का तो मौका नहीं मिला, पर मेरे एक चाची हैं जो लखनऊ में जन्मे और इलाहाबाद में पनपे। लखनऊ की नज़ाकत देखी तो नहीं, पर सुनी है कि इलाहाबाद की तरफ रुक कराने से एक लखनवी को ज़ुकाम हो जाता है क्योंकि इलाहाबाद में अमरूद होते हैं, लखनऊ में यर्मांगीटर रखते ही नहीं, सरदियों में सरदी रजाइयों से मापी जाती है। रात के बारह बजे भी बिना छतरी के जाना लखनवी तहजीब में बुरा समझा जाता है।"

में शायद कुछ धीर कहता कि डाक्टर साहब बोले—

“आप तो लगनऊ के बारे में पूरी जानकारी रखते हैं।”

हम सभी लोग हंस पड़े।

“पर डाक्टर साहब, मुझे तो आश्चर्य यह हो रहा है कि आपने फिजिक्स में डाक्टरेट हासिल की, यह तो लगनधी ‘जीनिगस’ से भेल जाती चीज नहीं है।” बात में कुछ सरगर्मी जानें के लिए मैंने एक पटागा छोड़ा।

खैर, पटाने से तो हर राहुगीर चौक पड़ता है, डाक्टर साहब भी चौंके।

“यह तो कोई बात नहीं। लगनऊ में अपनी गुनियमिस्टी है। भारतीय स्तर की ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की वैज्ञानिक प्रतिभा वहाँ पर विकसित हुई है और मान्यता भी प्राप्ता हुई है। लगनऊ की अपनी शान है जिसका कोई सानी नहीं। वहाँ की तहजीब है। वहाँ की नजाकत के बारे में सुना है, पर नजाकत के साथ वहाँ की नफासत है, वहाँ का अपना ही लहजा है, बात का, सलीके का।”

डाक्टर साहब ने लगनधी नफासत के साथ-साथ लखनवी तेवर का भी हल्का अहसास कराया। शायद एक लखनवी का एक लगनधी सेण्टीमेण्ट भी होता है। मुझे अपने दोस्त की बात याद है। उसने सुनाया था कि एक लखनवी पनवाड़ी ने एक अजनबी को पान देने से इसलिए इन्कार कर दिया क्योंकि उसने एक सिंगल पान मांगा था जबकि एक रिहायशी लखनवी पान का जोड़ा खाता है और सिंगल पान खाना तहजीब के खिलाफ समझा जाता है। मेरे दोस्त के लड़के के अनुसार तो लगनऊ का पनवाड़ी जब अपने ही सामने लखनवी शान को डहते हुए देखता है तो वह तिलमिला उठता है। वह हैरान है कि इन नये लोंडों को न तो पान के जायका का पता है और न पान को मुंह में रखने के तरीके का। दिल की बात जवान पर आ जाती है:

‘वदतमीऊ कहीं के ! आ गए हैं पान खाने को। इनके बाप-दादों ने भी पान खाए थे क्या ? कोई शऊर नहीं।’

खैर, डाक्टर अग्रवाल के तेवर में वह तृष्णी नहीं थी जिसके कारण कई हो सकते हैं। परन्तु एक बात जरूर है। आदमी चाहे पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ हो, मगर एक बार किसी प्रकार की तख्ती गले में बंध जाए तो वह आखिरी दम् तक उस तख्ती की लाज रखेगा। तख्ती चाहे लखनवी या बनारसी की हो, हिन्दू-मुसलिम की हो, बंगाली-बिहारी की हो, वह सब कुछ हटा सकता है, अपनी शिक्षा

व संस्कार, सम्यता का धारण, वह अपने कपड़े तक हटाकर नंगा हो जाएगा, पर वह तस्ती जो गले में बंध गई, किसी कीमत पर नहीं हटेगी।

मैंने बात ठण्डी नहीं होने दी बल्कि जलती में पूरा डाल दिया। “डाक्टर साहब, मेरा मतलब तो इतना ही था कि ससनऊ का मिजाज शायराना है, प्राधिकारना है। साइन्स मेरे हिसाब से भ्रम से मेल नहीं खाता। साइन्स एक इल्म है। इल्म और भ्रम बिल्कुल दो भलग चीजें हैं जैसे कि धायुर्वेद और एलोपैथी। इल्म से क्यादा अहमियत भ्रम की है।”

मुझे बात पूरी भी नहीं करने दी और मेरी बात की उस छोटी-सी मजलिस में भयंकर व तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इस बार डाक्टर साहब झकेले नहीं थे। उनके साथ केमिस्ट्री और जीव-विज्ञान के प्राध्यापकों ने भी सहयोग किया।

“देखिये, साहब, आप लोग मुझे अपने घर में ही पूरी बात करने की इजाजत नहीं देते, यह तो मेरी ही नहीं, भारतीय संविधान में प्रदत्त मूल अधिकारों की भी भ्रवहेलना है। अभिव्यक्ति का अधिकार तो हर नागरिक को है ही, क्यों डाक्टर साहब ?” मैंने हसते हुए कहा। मजलिस हस पड़ी, एक कहकहे के साथ।

“विद इयु अपोलॉजी टु साइन्स हेल्ड्स, मेरी तो निजी धारणा यहा तक बन चुकी है कि साइन्स और कॉमर्स का भादमी अच्छा भ्रफतर ही नहीं बन सकता।”

मेरी बात ने बम का काम किया। मेरी बात पूरी होने ही नहीं दी गई और इस बार की प्रतिक्रिया और भी भयंकर। फॉर्मर्स के सेकचरार बगे, जो अभी तक गुटनिरपेक्ष बने हुए थे, सीयाल से कूदने में देर नहीं लगी। उनका ब्लॉक एकदम ठोस। डाक्टर साहब ने मेरी बात को केवल एक निजी खयाल बताया जिसके पीछे न कोई तर्क और न कोई बुद्धिगम्य आधार। केमिस्ट्री वाले सज्जन को तो मेरी बात से तारा-अच्छा भ्रकका लगा और शायद उनकी भरे वारे में बनी हुई धारणा ही बदल गई हो। उन्होंने बड़े ही रुखे शब्दों में अपनी बात कही।

“आप इस तरह से भी सोच सकते हैं, मैं तो ख्वाब में भी नहीं सोच सकता था।

मेरी बात का भ्रभाका वंसा टूभा जैसा भ्रकरण में भारतीय भ्रणु-परीक्षण का हुभा होगा। इस छोटी-सी मजलिस की प्रतिक्रिया बहुत कुछ वंसी ही थी जैसी कि भ्रकरण की प्रतिनिया विश्व की प्रभुभ राजधानियों में हुई।

मेरी बात ने एक कण्ट्रोवर्सी गूढ़ी कर दी। विज्ञान तथा वाणिज्य वर्ग के हिमायती लोगों ने एक ब्लॉक बना लिया। साहित्य और कलावर्ग का हिमायती केवल मैं ही। दो साथी जरूर थे, मगर चुप। कारण थायद यही रहे हों कि उन्हें या तो मेरी दलील में दम नजर नहीं आया या वे जानबूझकर कण्ट्रोवर्सी से बचना चाहते हों। आज के जमाने में कण्ट्रोवर्शियल आदमी बनना कोई नहीं चाहता।

मुझे भी एक तरह का मजा आने लग गया। आतिर बात में तो जरा गर्मी आए। जेब में गर्मी लाना हर आदमी के बश में नहीं होता, लेकिन बात में तो गर्मी लाई जा सकती है, इस बात का आर्ट तो मैं जानता था काफी हाउस में, गाड़ी में यात्रा करते हुए तथा टी-बलब में इस आर्ट को बहुत बार आजमाया है। जरा-सा पटाखा छोड़ो और लोग चमक उठेंगे। मैंने भी एक मुस्कराहट के साथ निवेदन किया—

“देखिए डाक्टर साहब, आप मुझे कहने का हक दें तो मैं कहूंगा कि कला का आदमी एक अच्छा अफसर बनता है।”

“आखिर आपका तर्क क्या है?” डाक्टर का आग्रह था।

“तर्क तो एक नहीं, अनेक दे सकता हूँ, मैंने निवेदन शुरू किया। “और मेरा सबसे बड़ा तर्क तो यह है कि कला का आदमी प्रतिबद्ध नहीं होता।”

“बात स्पष्ट कीजिए,” डाक्टर ने सिर हिलाते हुए कहा।

“कला का आदमी हनुमानजी की तरह होता है।” मुझे हंसी आ गई और सभी लोग हंस पड़े।

“हनुमानजी की तरह से आपका मतलब क्या है? पहेलियां न बुझाइए।” केमिस्ट्री के लेक्चरार बोल पड़े।

“हनुमानजी के बारे में तो आप लोग जानते ही हैं। ज्यों-ज्यों सुरसा बढ़ी, हनुमानजी बढ़े। सोलह योजन से बत्तीस हुए, चौंसठ हुए और एक सौ अठाईस योजन हुए। पर सुरसा भी उसी तरह बढ़ती गई। हनुमानजी महाराज ने अगर साइन्स के फॉर्मूले पढ़े हुए होते या एक ही तरह की गणित पढ़ी हुई होती तो बस दूने होते जाते और एक स्टेज आ सकती थी जबकि हनुमानजी महाराज की रीढ़ की हड्डी से शरीर का बैलेन्स संभलता नहीं। इसका नतीजा यह भी हो सकता था कि सुरसा और हनुमानजी दोनों ही गिर पड़ते। परन्तु जब हनुमानजी ने देखा कि सुरसा की तरह का गणित ठीक नहीं, वे मच्छर बन गए और सुरसा चारों खाने

चित्त। यही बात तो शेक्सपियर का फास्टा कहता है, किंतु समय क्या बुद्धि लगाई जाए, इसीका नाम तो बहादुरी है। यही एक बात है जो एक कला का ही भावमी जानता है, विज्ञान और वाणिज्य का भावमी नहीं जानता। एक सौ घंटा-इस योजना की तम्बाई से मच्छर बन जाना।" मैंने बात पूरी भी नहीं की थी कि सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े।

"आप इसको मजाक में ले रहे हैं, गम्भीरता से सोचिए। एक विज्ञान का अध्यापक कक्षा में जाता है, उसे फॉर्मूला भाद नहीं, उसकी तो गाड़ी भटक गई। वह तो भागे नहीं चल सकता। दूसरी तरफ एक इतिहास का अध्यापक कक्षा में जाता है और पढ़ाना शुरू करता है, 'सोरसाह सूरों'। उसका पाठ शुरू होता है—

"प्यारे बच्चों, शेरशाह का बचपन का नाम था मुराद। वह बिहार में सहस्र-राम..."

"बीच में एक लड़का बढ़ा होता है और बोलता है, सर, उसका नाम मुराद नहीं फरीद था।

"अध्यापक जरा भी विचलित नहीं होता और लड़के को बैठने का इशारा करते हुए एक वाक्य धीरे बोल देता है—

"हां, कुछ इतिहासकारों का मत है कि उसका पुराना नाम फरीद था। कला पाठवस्तु। प्रश्नकर्ता धीरे-धीरे।

"परन्तु विज्ञान का अध्यापक यह धोड़े ही कह सकता है कि यह फॉर्मूला भी सही और वह फॉर्मूला भी सही। उसके पास ऐसा 'आपान' नहीं।"

सब लोग फिर खिलखिलाकर हंस पड़ते हैं।

"हम मान गए, कला का भावमी अच्छा भफसर बनता है।" डाक्टरधर्मपाल बोले।

"मैं जानता हूँ, आप माने नहीं। भाग मजाक में बात ले रहे हैं। यही शीट शेक्सपियर के साथ में हुई और अन्त में एक मूल्य पात्र के मूंड में रखकर बात कहनी पड़ी: 'योग सममते रहे कि मैं मजाक कर रहा हूँ जबकि मैंने सही और मच्छों बातें ही कही'। अस, यही स्थिति मेरी है। भाग मेरी बात समझ नहीं पा रहे हैं। भाग को दोहरी मान्यताओं के मुग में बात ऐसी कही जाए कि उसकी दो चिनिया निकलें। एक ही प्रश्न का जवाब 'हां' भी हो और 'ना' भी। यह तो कला

वर्ग का ही व्यक्ति कर सकता है क्योंकि वह प्रतिबद्ध नहीं होता है। उसके तो जेनस की तरह दो मुँह होते हैं और दोनों मुँहों से एकसाथ दो बातें कह सकता है। एक-दूसरे के कण्ट्रिब्यूटरी। बात बिगड़ने लगे तो एक मुँह दूसरे मुँह की बात की काट कर दे।

“तुम साइन्स और कॉमर्स के आदमी नियमों की बात करते हो और जीवन में भी नियमों को लागू करने की चेष्टा करते हो। नियम मशीन पर लागू होते हैं। मशीन नियम से चलती है। उसकी गति व व्यवहार-पद्धति नियमों से आवद्ध होती है। मशीन में कल-पुर्जो होते हैं। मोटर को ले लीजिए। उसकी स्पीड अगर आपने तय कर दी तो वह तो उसी हिसाब से चलेगी। पर आदमी की गति आप तय नहीं कर सकते। आदमी मशीन नहीं है, उसके दिल है, अन्तरात्मा है। उसकी अन्तरात्मा कब क्या बोल दे, आप कुछ नहीं कर सकते। उसके खुद के बनाए हुए नियम वह खुद ही तोड़ दे यदि उसकी अन्तरात्मा चुपके से कह दे।

“आदमी नियम बनाता है तोड़ने के लिए। नियम चाहे आदमी के हों चाहे भगवान के। उसको फांसी दो या नरक। विज्ञान व कॉमर्स के आदमी तो कमिटेड हैं। यह एक फण्डामेंटल फर्क है, इसलिए आप लोग अच्छे अफसर नहीं बन सकते, नेता नहीं बन सकते।”

मैं शायद कुछ और कहता, परन्तु घन्ना चाय ले आया।

“लो, चाय आ गई। मजलिस का ‘प्री-टी’ सेशन तो खतम हुआ। अब चाय पीजिए,” मैंने प्रस्ताव किया।

“आपकी बातें भी ताजगी देने वाली होती हैं,” डाक्टर अग्रवाल कप उठाते हुए बोले।

“डाक्टर साहब, मैं आपको खुद के राज की बात बताए देता हूँ। इसी चाय की वजह से तो बातें कर सकता हूँ। मेरा तो खयाल है, समुद्र मन्थन में चाय भी निकली थी। देव और दैत्यों को चाय का महत्त्व समझ में नहीं आया होगा। इसे बेकार समझकर धरती पर फेंक दिया। चाय एक नैसर्गिक पेय है।” मैंने भी चाय की घूंट लेते हुए कहा।

“किसी चाय की कम्पनी को पता लग जाएतो वह आपको एजेण्ट बना ले।” एक कमेण्ट आया।

फिर एक कहकहा।

"बलो, वह तो देखा जाएगा, पर आपका भ्रान्त कौसे हुमा ? मेरे लिए कोई सेवा का भवसर प्रदान कीजिए ।" मैं भीषचारिक हो गया ।

"कोई मकान तो दिखाइए, क्या यों ही बैठे रहेंगे ।" डाक्टर भ्रप्रवाल बोले ।

"मैं तो खुद सेठ गाठिया जी की मेहरवानी से इस मकान में बैठा हूँ ।" अपनी प्रसमयता व्यक्त करते हुए बोला ।

"मैं भी तो यही कह रहा हूँ कि गाठिया जी से हमारा भी परिचय कराइए । गाठिया जी इस बारे में पूरी मदद कर सकते हैं ।" डाक्टर साहब ने बात को और स्पष्ट किया ।

"बघाते कि गाठिया जी चाहें ।" मैंने एक तुरप मारी ।

"इसीलिए तो आपके पास आए हैं । गाठियाजी तो आपके हाथ के आदमी हैं ।" डाक्टर भ्रप्रवाल मुझे समझाने लगे ।

डाक्टर साहब न्यूट्रोन और प्रोटोन की तो बात कर सकते हैं परन्तु सेठ गाठिया जी तो एक ऐसे सेठ हैं जो न हिप्नोटाइज होते हैं न टिमोरेलाइज । कई करोड़पति इनकी जेब में रहते हैं । सब पूछो तो जमाना ही ऐसा भ्रा गया है कि लोग देखते हैं कि आपकी जेब में क्या है । दिमाग में क्या है, कोई जानने की भी कोशिश नहीं करेगा । आपके दिमाग में झाला-झाला चीजें हो सकती हैं, पर बेमाने हैं ।

भगर आपकी जेब खाली है और दिमाग भरा हुआ है तो भी बेकार । आपकी जेब गर्म होनी चाहिए, आपकी जेब की गर्मी का कुछ भाग भगर दूसरे की जेब में बरता गया तो आपका काम बन गया । आजकल लोग जेब पर परलंब लगाते हैं ताकि कोई जेब में भ्रक नहीं सके । आजकल तो जेब का बोलबाला इस कदर बढ़ गया है कि बड़े-बड़े ग्रन्थ भी भ्रब जेबी हो गए । जब तक ये जेबी नहीं थे तो भ्रालमारियो में बन्द पड़े थे । भ्रालमारी में बन्द हो चाहे दिमाग में बन्द हो, बात एक ही है । पर जब इनके जेबी संस्करण शुरू हुए तो प्रकाशक और लेखक दोनों की जेबें भर गईं । हर लेखक यही चाहता है कि उसकी किताब का जेबी संस्करण हो । हर भ्रादमी जब कौई नई योजनाएं बनाता है तो उसका भ्रयाल यही रहता है कि दिमागी भाइडिया जल्दी से जल्दी जेब में पहुँच जाए । भाइडिया जब तक दिमाग में है, सारी बात थ्योरेटिकल है । परन्तु जब भाइडिया जेब में पहुँच जाता

है तो बात प्रेम्बिकल हो जाती है। लोगों का ध्यान जेब की ओर रहता है। बहुत ही प्रेम्बिकल लोग तो वे होते हैं जो जेब में हाथ डाले राहते रहते हैं और ग्राम जिनकी दूसरों की जेबों पर लगी रहती है।

आज का सबसे पेयिंग घंटा भी जेब काटना है। परन्तु हर आदमी को यह घन्टा नहीं आता क्योंकि आजकल यह घन्टा बड़ा ही सोफिस्टिकेटेड हो गया है। आप डाक्टर हैं फिजिक्स में। आप न्युक्लियर फिजिक्स की बात जानते हैं, अणु और परमाणु की तोड़ने की बात जानते हैं। एटमिक पर्यजन और फिशन की बात कर सकते हैं पर आप जेब काटने की बात नहीं जानते, चाहे आप डाक्टर के भी डाक्टर हो जाएं। यह बात जानता है सेठ गांठियाजी। सेठ गांठियाजी अपनी जेब कटने नहीं देता। उसकी जेब में हैं आपके नेता, आपके मंत्री, आपके सरकारी अफसर, आपका विधान, आपका न्याय। उसकी जेब में फालतू चीज कोई नहीं होती। इसलिए आप और मेरी तरफ गांठियाजी की नजर ही नहीं पड़ेगी। क्या आप बतला सकते हैं, क्यों ?

मैंने चलते में सवाल कर दिया और डाक्टर अग्रवाल कुछ नहीं बोले। केवल सिर हिला दिया जिसका मतलब था, उनकी तरफ सेना है।

“इसका सीधा-सादा मतलब यह है कि आपका यह सोचना कि गांठियाजी पर मेरा असर है, गलत ही नहीं बल्कि बेबुनियाद है।”

“पर लोगों ने तो यही कहा,” डाक्टर ने बीच में बात कह दी।

“लोगों के इतनी बात समझ में आ जाती तो आज देश की दिशा और दशा ही और होती। परन्तु आप तो सोचिए। सेठ गांठियाजी की नजर केवल दो तरह के व्यक्तियों पर हो सकती है, अब्बल तो वे लोग जिनकी खुद की जेबें भरी हुई हों और दूसरे नम्बर पर वे लोग जो ब्लेड का काम दे सकते हैं।”

ब्लेड के नाम से डाक्टर अग्रवाल चौंके।

“चौंके नहीं, ब्लेड से मेरा मतलब उन लोगों से है जिनके प्रभाव व आतंक से वह दूसरों की जेब काट सकें। मसलन एक पुलिस का बड़ा अधिकारी है, कोई सेल्सटेक्स का अधिकारी। उनका सब लोगों से सीधा सम्पर्क होता नहीं। उन्हें चाहिए कुछ ओनेस्ट ब्रोकर्स। कुछ ईमानदार दलाल। दलाल का एक ऐसा घन्टा है जिसमें दलाली दोनों तरफ से ली जाती है और जायज होती है। कानून से मान्यता प्राप्त है। बड़े-बड़े दलाल तो दलाल स्ट्रीट में रहते हैं। लांठियाजी,

गाठिया, बाठिया, टाठिया, लतपा, मिड़ बगरह-बगीरह । गाठियाजी दलाल स्ट्रीट की तरफ मुंह करके यहाँ बैठे हैं । जब भी किसीको कोई ईमानदार दलाल चाहिए तो वे किससे बात करें सिवाय गाठियाजी के । गाठियाजी के कई गाठें हैं और हर गाठ एक आइसिंग्ड का काम करती है । हर आइसिंग्ड में तरह-तरह के लोग बैठे हैं । तस्करी करने वाले, ब्लैक मार्केटिंग करने वाले, प्रोफेडियर, प्रडल्टेशन करने वाले । गाठियाजी एक समुद्र के समान है । उस समुद्र में मगरमच्छ हैं, साप हैं, सीपिया हैं, मोती हैं, हीरे हैं । गाठियाजी मुंह से बात नहीं करते । उनकी तो जेब है । जेब में डाल दो । जेब में से निकाल लो ।

“ अब आप बताइए, गाठियाजी आप और हम से क्या बात करें ? जैसे कि मैंने पहले भी धर्ज किया था कि वे बो लते तो हैं ही नहीं । बोलने वाले हैं तो आप हैं, मैं हूँ । सानी जेब वाले ही तो जीभ काम में लाते हैं । गाठियाजी से हम लोग बात भी करें तो क्या करें । हमारी जेब को तो वे जाने हुए हैं कि खाली है और ब्लेड का काम दे सकें ऐसी हमारी कुव्वत नहीं । हम तो उनके चले मछली पकड़ने के घन्घे में गड़बड़ ही करा सकते हैं । उनकी दलाली देने के लिए हमारे पास कुछ नहीं है ।

“ इसलिए मेरा आपसे यही कहना है कि आपने गलत ही समझ लिया कि मेरा गाठियाजी पर असर है । गाठियाजी पर किसीका असर नहीं है । आप कहे तो मैं आपको अपने साथ लिवा ले जा सकता हूँ । गाठियाजी के घर पर बड़ी भीड़ रहती है । बड़े-बड़े भित्तमंगे, चन्दाखोर । गाठियाजी की सिफत तो देखो, वे बोलते-बोलते कुछ नहीं । अपने जेब में हाथ डाले हुए उन सबकी मुनते हुए गूहप्रवेश करते हैं । वैसे किसीको दो मुट्ठी दाने डालकर टरका देते हैं, तो किसीको नोटों के बण्डल देकर । गौशाला वाले, घनापाथम वाले आदि कई प्रकार के भित्तारी होने हैं । गाठियाजी की तारीफ तो यह है कि वे जानते हैं कि कौनसे गौशाला में गायें पल रही हैं तो कौनसी गौशाला में सफेद गायों के बदले कौनसे सफेद जानवर पल रहे हैं । गाठियाजी को यह भी मालूम है कि गौशालाएँ खतम हुई तो फिर बूचड़लाने भी खतम । अगर बूचड़लाने खतम तो चमड़े के कारखाने भी खतम । लैर, विभिन्न प्रकार के लेवल लगाए हुए भित्तारी वहाँ होते हैं तो कुछ भित्तारी दिन-भर की अपनी भिक्षावृत्ति व चन्दे की रकम भी गाठियाजी के यहाँ जमा कराते हैं । अगर आप कहे तो, अपने भी खलें और सेठ

गांधियाजी से बात करें, परन्तु सारी वस्तुस्थिति आपके सामने है। मैंने अपनी तरफ से अपना दृष्टिकोण तथा दृष्टि प्रस्तुत कर दी। बात मोटे तौर पर है एनलाइटेड सेल्फ इन्ट्रेस्ट की।”

“गांधियाजी के बारे में आपने मुझे नई जानकारियां दीं। गांधियाजी के बारे में सुना तो बहुत था। कहते हैं कि वे सबको चंदा देते हैं, और यह भी सुना था कि आपकी वे बड़ी कद्र करने हैं। हो सकता है कि आपने यों ही अपनी धारणा बना रखी हो। आपके कहने से पिछली बार उन्होंने कई जगह चन्दा दिया, यह तो शहर में चर्चा है।”

डाक्टर अग्रवाल ने बात पूरी भी न की थी, मुझे हंसी आ गई। “देखिए डाक्टर साहब, अगर कोई बनिया एक रुपये की छीलर देता है तो भी समझ लेना चाहिए कि इसमें कोई मतलब होगा, कोई स्वार्थ होगा वरना बनिया क्यों आपको सौ पैसे दे, गिनने का कष्ट करे। निःस्वार्थ भाव से तो वह दो कदम ही नहीं चलता। फिर एक रुपये के सौ पैसे क्यों दे ? या तो उसे खोटे सिक्के पार करने होंगे या कोई और बात होगी, जिसका अर्थ आज तक मेरी समझ में नहीं आया है।”

“इसको कहते हैं—वायस्ड आउटलुक,” डाक्टर ने निर्णय दे दिया।

“मैं भी चाहता हूँ कि मेरा निष्कर्ष गलत हो। मैंने भी कई बार आत्मावलोकन किया और आपकी तरह सोचा पर मुझे शीघ्र ही अपना निर्णय बदलना पड़ा। हाल ही की एक ताजा घटना सुनाता हूँ। गांधियाजी ने दो-चार अपने पुराने ड्राइवरों को टैक्सियां दिलवाईं। पैसा दिलवाया सहकारी समितियों से, या कुछ राष्ट्रीयकृत बैंकों से। सेठजी ने उनकी आइडेंटिटी तस्दीक कर दी। इन आदमियों में से एक गणेश को मैं जानता हूँ। मैंने भी यही सोचा कि गणेश पुराना ड्राइवर है और गांधियाजी ने उसकी पुरानी सेवाओं का खयाल रखते हुए ही ऐसा किया होगा। परन्तु कुछ दिन पहले जब गणेश और उसकी टैक्सी पकड़ी गई तो सुनने को मिला कि गणेश तो सोने के विस्कुटों की स्मगलिंग में लगा हुआ था। गणेश अन्दर। टैक्सी बैंक को हाइपोथेकेटेड थी। बैंक बोली, चिल्लाई। कुछ भीतरी सर्किल के लोगों का कहना है कि गणेश व अन्य ड्राइवर गांधियाजी के लिए स्मगलिंग करते थे परन्तु ऐन वक्त पर गणेश अन्दर गया, टैक्सी के लिए बैंक रोए। पर गांधियाजी क्यों रोए ? वे तो शुद्ध हैं, साहूकार हैं। एक और दिलचस्प बात

हैं। गांधियाजी ने एक पोल्ट्री फार्म खोल रखा है, बम्बई में मैंने सुन रखा था, परन्तु मेरी समझ में यह बात कभी नहीं आई कि गांधियाजी जैसे व्यक्ति ने यह क्या क्यों अपनाया है? कोई बोना कि पोल्ट्री का क्या अच्छा है। वहा पर बिना मुर्गा ही मुर्गियां पकवा देती हैं परन्तु जब मीसा के अन्तर्गत कई पोल्ट्री फार्मों पर रेड हुए तो पता पड़ा कि मैं सारे के सारे पोल्ट्री फार्म भी स्मर्गासिग की श्रृंखला में जुड़े हुए थे। मुर्गियां पालने की जगह ऐसी मुर्गियां पाली जाती रहीं जो सच-मुच में सोना के अण्डे दे रही थीं, सोने के विस्तृत देती रहीं, घडिया देती रहीं। अब सेठ गांधिया के नाम से चलने वाला मुर्गाखाना बन्द। उनके मुर्गाखाना तथा गोशाला के अण्डे के पीछे मूल धारणा एक ही थी। मुनते हैं कि गांधिया जी ने सारी मुर्गियां छाजाद कर दी हैं। सेठजी ने बैसे कई पक्षियों को भी वैसे दे-देकर पिजड़े में से छुड़ाया है मुर्गियां भी अब पिजड़े से छाजाद है।

“यह सारी जानकारियां ही मेरे लिए नई हैं, परन्तु आप कुछ भी कहें सेठ गांधियाजी आपसे तो बहुत प्रभावित हैं, यह तो मेरी कम्प्लैण्ड जानकारी है, परन्तु आप इसको किस प्रकार श्ण्टर्यैट करेंगे, यह तो आप ही जानें।” डाक्टर अग्रवाल अपनी बात पर अडिग।

“तो फिर आप ही मदद कीजिए। हाईपोथेसिस आपके पास है। मेरे बारे में आप जानते ही हैं। करिये फिर साइंटिफिक अनेलिसिस। कोई डाटा चाहिए तो पूछ लीजिए,” मैंने बात को दूसरा टर्न दिया।

“मैं तो बाहर की चीजें जानता हू, कई इनसाइड की बातें भी तो हो सकती हैं।” डाक्टर अग्रवाल ने चूटकी ली।

सभी लोग हस पड़े।

“बात तो गहरी ही होनी चाहिए जब गांधियाजी जैसे लोग आपका सोहा मानते हैं।” पास में बैठे प्रोफेसर चतुर्वेदी बोले।

“आमिर, आप लोगों के इरादे तो नेक हैं।” मैंने चलती बात ठड़ी नहीं होने दी।

“इसके अलावा, आपके पास हर समय पाच-दस आदमी बैठे रहते हैं। बाहर के जाने-माने इंटेलेक्चुअल लोग आपके पास बैठे रहते हैं, रात के दो-दो बजे तक। यह क्या कुछ इंगित नहीं करता ?” प्रोफेसर चतुर्वेदी बोले।

मुझे जोर की हंसी छूटी। लोगों ने स्मित हास के साथ मेरा साथ दिया।

"अब सारी बात समझ में आ गई।" मैंने कहना शुरू किया, "यहीं गलती है सारे हाईपोथेसिस में। इसके इण्टरप्रिटेशन में।

"यह तो सच है कि मेरे पास पांच-दस आदमी बैठे जरूर रहते हैं। सबके मुसौटा भी लगा हुआ होता है, बुद्धिवादी का, प्रबुद्ध वर्ग का, नवचेतना के अप्र-दूतों का।

"मैंने अकेले में कई बार सोचा भी। मैंने अपने-आपसे सवाल किया।

"मैं क्या करता हूँ, सिवाय चाय पर चाय की प्यालियां खतम करने के, एक-दो पैकेट सिगरेट का धुआं उड़ाने के।

"बातें करता हूँ, ज्ञान वेचता हूँ, चायघरों में, अपनी बैठक में भी, बातें ही बातें, देश-विदेश की, राजनीतिक व सामाजिक मुद्दों व मसलों पर।

"मेरे अन्दरभी कभी अन्तरात्मा होती थी जो दब गई होगी या चाय के निर-न्तर सेवन से गल गई होगी। खैर, अन्तरात्मा का भूत रहा होगा या उसके भव-क्षेप। मुझे लगा कि कोई कह रहा है 'कोरी गप्पे मारते हो, इसके सिवाय कुछ नहीं करते।' मैं इसको ज्यादा स्पष्ट शब्दों में सुनता उससे पहले चाय की प्याली आ गई और चाय पीने लग गया और इसी दौरान एक लहर आई। दिमाग से उठी होगी। लहर की गूंज कुछ इस प्रकार की थी। हिमालय के उस पार लोगों ने चूहे मारे, मक्खियां मारीं, मच्छर मारे और हिमालय के इस पार हम गप्पें मार रहे हैं। खैर, मारने का काम तो हिमालय के दोनों ओर हो रहा है पर मारने-मारने में फर्क है और फर्क का कारण है—सांस्कृतिक पृष्ठभूमि। दो पृष्ठभूमियों के पीछे फर्क है जीवनदर्शन का।

"हिमालय के उस पार, जो मच्छर मार सकते हैं, मक्खियां मार सकते हैं, लाखों आदमियों को भी मच्छर और मक्खियों की तरह मार सकते हैं, वसतें कि यह जंच जाए कि आदमी मच्छरों की तरह गन्दगी पैदा करते हैं। परन्तु हिमालय के इस पार, अहिंसा की पृष्ठभूमि में पला हुआ जीवन अगर कोई चीज मार सकता है तो वह गप्प ही हो सकती है।"

सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े।

"गप्प मारने से हिंसा नहीं होती। यह है एक अहिंसक हिंसा।" एक टिप्पणी।

"इसीलिए भारतीय प्रतिभा के अनुकूल पड़ती हुई अगर कोई चीज है तो वह

है केवल गप्पें मारना। हमारे पुरखे भी यही करते रहे। अष्टादश पुराण इस बात की साक्षी स्वरूप हैं।" मैंने टेर पूरी कर दी।

"भापने तो खूब खोजपूर्ण बात कही।" प्रोफेसर चतुर्वेदी की टिप्पणी।

"भाज तो खोज ही खोज हो रही है। ऐसी खोजें जिनका पहले कोई खुर-खोज ही न था। तगजमहल शाहजहा ने नहीं बनाया, मीरा के भजन मीरा के नहीं बल्कि उसकी ननद के हैं। परन्तु मेरी तो हकीकत-व्यानी है। मुझे तो उस दिन के बाद कभी किसी अन्तरात्मा जैसी चीज ने तग नहीं किया और मैं तो यही मानकर चलता हूँ कि यही इस देश की 'जीनियस' है..." मैंने बात पूरी भी नहीं की थी कि डाक्टर अग्रवाल बोल पड़े।

"कोई और चीज करे भी तो क्या करे, देश में स्कोप नहीं।"

"हो भी तो हम उस स्कोप को मिटा देंगे।" मैंने नया छरी छोड़ा।

"यह कैसे?" डाक्टर के चेहरे पर अश्नखिल बना हुआ दिखाई दे रहा था।

"काम की बातें तो कामसूत्र में रह गईं। हमें काम से कुछ नहीं लेना।" मैंने उदासीनता के साथ बात कही।

"भाप चाहे जो कहो, इस शास्त्र बेकारी के देश में काम है ही कहा?"

डाक्टर ने भी उसी टोन में बात कही।

"देखो, डाक्टर साहब, पिछली रात भी हम इसी मुद्दे पर बात कर रहे थे। चलते-चलते बात रुकी भी इसी मुद्दे पर कि काम नहीं है। मुझे एक मजाक सूझा। मैंने कहा कि लोग पोल्ट्री फार्म खोलते हैं, मुर्गें-मुर्गिया पालते हैं परन्तु मेरी तो इच्छा है कि एक बिल्लियों का फार्म खोला जाए। बिल्लियों को ट्रेनिंग दी जाए। फिर एक पोषण कर दी जाए कि जिन्हें चूहे संग करते हैं, वे हमारी बिल्लियों की सेवा ले सकते हैं। सर्विस चार्ज फ़कत दो रुपये चौबीस घण्टे के। अमरीकी सूचना के अनुसार इस देश में चूहों की जनसंख्या आदमियों से चार गुनी है और चूहे उतना ही खान खा जाते हैं जितना कि इस देश के आदमी। हर आदमी चूहों से संग है। इस महंगाई के दौर में दो रुपये देकर हर कोई अनाज भी रसा करना चाहेगा।

"अगर सारे चूहे मर जाएं या चूहों की जनसंख्या बन्दोल में आ जाए तो करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत हो सकती है। भिनारी की तरह दूसरे देशों से अनाज मांगने की ज़रूरत से छूटकरा हो सकता है, वना तो इस देश की

हरित क्रांति को चूहे ही पा जाएंगे। इन सब चीजों को मजाल में रखते हुए बिल्ली पालन के प्रोग्राम को राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया जाएगा तो देश की अर्थव्यवस्था ठीक हो सकती है। हर एक बेकार नौजवान अगर बिल्ली-पालन में लग जाए तो दिक्कत क्या है। बिल्लियों को फीड की आवश्यकता नहीं होगी। बिल्ली का फीड चूहा। यह सारी योजना व्यवहार्य है और इनमें फाइनेन्स की भी जरूरत नहीं। परन्तु कितने नौजवानों के दिमाग में यह बात स्ट्राइक हुई ?”

“यह तो वस्तुतः क्रांतिकारी योजना है।” सारी मजलिस बोल उठी।

“आप तो बड़े भारी अर्थशास्त्री हैं, आपको मिनिस्टर बनाना चाहिए।”
डाक्टर ने मुभावा दिया।

“मैं भी आपकी बात की ताइद करता हूँ। मैंने भी अपना वोट अपने को ही दे दिया। पर एक गजब हो जाएगा...।” मुझे आगे की बात कहने नहीं दी।

“वह क्या ?” डाक्टर की उत्सुकता जागी।

“उस हालत में मैं आपको यहाँ नहीं मिलूंगा।”

“आप तो कोठी पर मिलेंगे।” डाक्टर बोला।

“वहाँ भी नहीं,” मेरा जवाब था।

“तो फिर आप कहां चले जाएंगे ?” डाक्टर ने मेरी तरफ देखा।

“मैं चला जाऊंगा गांठियाजी की जेब में।”

एक बार फिर जोर का कहकहा लगा।

अनिच्छित पर इच्छित प्रश्न ?

कई कुत्ते कुत्तों की भीत नहीं मरते

मैं अलवार उठाना हूँ। मैं रोटी खाने और अलवार पढ़ने में बड़ी जल्दी करता हूँ। सटापट रोटी खा लेता हूँ।

कई बार तो मेरी पत्नी बड़े ही भीठे शब्दों में बड़ी कड़वी बात कह देती है। कोई किसीको नहे कि तुम पिछले जन्म में कुत्ते थे तो उसका जवाब हाथापाई के सिवाय कुछ नहीं हो सकता, बशर्ते कि सुनने वाले में जरा भी स्वाभिमान हो। पर मैं यह बात कई बार मुन चुका हूँ। शुरू में तो मैं चमका और गुर्राकर बोला कि जैसा खाना जिस तरह से खिलाया जाता है, उसको मैं खा लेता हूँ, यही मेरा कुत्तापन है न। खैर, यह तो पुरानी बात हो गई। अब तो मैं इस तरह के रिमार्क और खाने सटासट निगल जाता हूँ। खाना निगलता रहता हूँ और साय-साय बात भी। खवाने से उसका कड़वापन जीभ को बरदास्त नहीं। अचेतन में इसके पीछे कारण यही रहा हो कि जीभ अस्वादिष्ट खाने को हलक की तरफ धकेल देती हो। भोजन नली में से होता हुआ खाना गड़गड़ करता पेट में। खैर, मेरा पेट मेरी जीभ से कहीं ज्यादा अच्छा है। मैं अपनी आदत का शिकार। अलवार की खबरें भी इसी प्रकार निगलता हूँ। न कभी चचाता ही हूँ और न रस ही लेता हूँ। हो सकता है कि खाना और खबरों में कोई स्वाद ले सके, ऐसी मेरी रसना न हो। मैं थादी, मेरा पेट घादी।

सब कुछ निगले जाने के बाद मैंने कई बार प्रकेले में सोचा कि कुत्ता इतना जल्दी क्यों खाता है? क्या वह धीरे-धीरे चबाकर नहीं खा सकता? अगर ऐसा वह कर सकता होता तो उसकी आंतों को दिक्कत नहीं होती, कुत्ते का स्वास्थ्य ठीक रहता, दीर्घायु होता। परन्तु कुत्ता नासमभी से मैमोत और असमय में मर जाता है। इसी बजह से कोई आदमी जब ढग से नहीं मरता तो लोग कहते हैं कि कुत्ते की भीत मर गया। लोग जीने में कला डूबते हैं। लोग 'साइक स्ट्राइन' की

बात करते हैं। परन्तु कुत्तों की तो एक ही मरण-शैली होती है—'ट्रेय स्टाइल' जिसको वे बड़ी मूर्खी से जानते हैं। हर 'माइन्ड्यूट डिटेल' का धायद वे इतना बखूबी पालन करते हैं कि उनका एक ट्रेड मार्क हो गया, एक पेटेंट बन गया। यह पेटेंट मशहूर भी इतना कि बहुत सारे आदमी भी आजकल इस पैटर्न पर मरते हैं। सहानुभूति में दो शब्द कहने का भी एक ढर्रा प्रचलित हो गया : आदमी तो बहुत अच्छा था, नेक था परन्तु हालात ने इस प्रकार मजबूरियाँ थोपीं कि बेचारा कुत्ते की मौत मरा। इस तरह की संवेदनाओं तथा शोक-सन्देशों के बीच बहुतसे लोग कुत्ते की मौत मरते हैं। मरने वालों की संख्या भी खूब बढ़ गई जैसे कि मरने का भी कोई नया फैशन चल पड़ा हो। अलवत्ता, यह बात जरूर है कि 'होट डाग्ज' लाने वाले लोग इस प्रकार की मौत मरते कम देखे गये।

रात्रि में ज्योंही कुछ कुत्ते जरा जोर से 'हू-हू' करने लगते हैं तो मेरी पत्नी को बड़ी चिन्ता होती है। अगर मैं सोया हुआ भी होऊँ तो भी वह मुझे जगाकर कहेगी "देखो तो सही, कुत्ते रो रहे हैं, कोई बड़ा आदमी मरने वाला है।" मैंने उसे कई बार समझाया कि जब कोई बड़ा आदमी मरता है तो कुत्ते नहीं रोया करते, उसके रोने के लिए बहुत सारे लोग होते हैं। सारा देश रोता है, झुंड़े झुक जाते हैं, रेडियो पर चलते प्रोग्राम रुक जाते हैं, नये प्रोग्राम शुरू हो जाते हैं, मातम की घुनें बजने लगती हैं। इसलिए जब कुत्ते रोते हैं तो समझ लो कि बड़ा आदमी तो नहीं मरेगा। तुम्हारी आशंका बेवूनियाद है।

"कोई बहुत बड़ा आदमी न सही, छोटा-मोटा नगर-स्तर का आदमी हो सकता है, आखिर इतने सारे कुत्ते बेमतलब थोड़े ही रोते हैं! रात को ऐसे बेवक्त पर। जरा सोचो, कोई न कोई कारण तो होगा ही।" मेरी पत्नी भी जिद पकड़ लेती है।

मेरी पत्नी में एक भारतीय नारी के सभी गुण हैं। उनकी फहरिश्त बनाना तो मुमकिन नहीं। उसमें तो गुण ही गुण हैं सिवाय दो छोटे-से नगण्य अवगुणों के—हिये में उपजे नहीं, कहना किसीका माने नहीं। परन्तु यह दुर्गुण रहे नहीं, जैसे कि बीड़ी पीना, पान खाना। मुझे उसके ये तथाकथित दुर्गुण खले भी नहीं, परन्तु आज उसकी जिद ऐसी लगी कि जैसे कि मेरी कलाई मरोड़ी जा रही है। मुझे भुंभलाहट आई। मैं बोला—

"तुम तो इस तरह से पूछ रही हो जैसे कुत्तों ने मुझसे सलाह करने के बाद

ही रोना-बिल्लाना शुरू किया हो। भादमी के मरने से तो उसके घरवाले रोने हैं, उसके रिश्तेदार रोते हैं। कई भादमी कर्जदार मर जाते हैं तो उनके पीछे वे रोते हैं जिनके रुपये दूबे। किसी सेठ का दिवाला निकल जाए और वह मर जाए तो उसके पीछे वे सब लोग रोते हैं जिनके रुपये दूब गए। परन्तु कुत्ते भादमी के लिए किम रिश्ते के नाते रोयें, मेरे समझ में आने वाली बात नहीं है उनकी अपनी ही बात होगी।" मैंने अपनी ससमर्थता व्यक्त कर दी।

"पर देखो, ये कुत्ते भय भी रो रहे हैं मुझे डर लग रहा है, यह कुत्ते का रोना बहुत ही भयानक है। जनता में सुख-शांति नहीं रहेगी," उसने अपनी रट को नई शब्दावली दे दी।

"क्या होता है रोने से। सारी जनता रो रही है, सिर धुन रहो है कि चीजें मिलनी नहीं, बीमते बढ़ रही हैं। इतने सारे जुनूस, इतना सारा दोर-दारापा। मगर क्या पसर हुआ बहो? कोई चीज रुकी कहीं? कोई हुआ बच्चाघात बहीं? सारा देश रो रहा है और जनता बिल्ला रही है—ब्राहिं मामू ब्राहिं मामू। परन्तु कहीं जू भी रेंगी? मगर चन्द कुत्ते रोते हैं तो क्यामत भा जाएगी। प्रलय मच जाएगी, यह है तुम्हारा मोचना। कुत्ते रोते हैं तो रोयें, मैं तो उनके पास जाने से रहा और न अनुभव-विषय बरूंगा कि तुम रोना बंद कर दो। अगर कुत्ते में जरा भी समझ होगी तो उनकी समझ में यह बात भा जानी चाहिए कि इस देश में रोने से या भौंकने से कोई चीं कने वाला नहीं है।" मैंने अपनी तरफ से बांट पिना दी।

मेरी पत्नी को मेरा दांटना भी भौंकना ही लगा हो। वह चुप। घोड़ी देर बाद कुत्ते भी रोने से रुक गए।

इन कुत्तों की वजह से मेरी नींद हराम हो गई। मैंने लिहाफ खीच निपा और मैं ऐसा अनुभव करने लगा कि मैं एक कैपसूल में बन्द हो गया हूँ मेरा कुत्ते तथा अपनी पत्नी से सम्पर्क मूत्र कट गया। मैं सोचने लगता हूँ।

कुत्ते क्यों रोते हैं? भादमी क्यों और कब रोता है, यह तो समझ में आता है, परन्तु वे क्यों रोते हैं? मैं ज्योंही इस विषय पर सोचने लगता हूँ तो समाधान तो नहीं मिलता और पुराना सवाल पुराने कर्ज की तरह रिगमू हो जाता है।

कुत्ता जल्दी क्यों खाता है? दरज़ा भादमी जल्दबाजी करता है, हो सकता

है कि कुत्ता भी डरता हो ? डरता हुआ जल्दबाजी करता है, यह तो तथ्य है पर कुत्ता किससे डरता होगा ? मैं सोचने लगता हूँ ।

डरता आदमी लड़ता है, यह तो मेरा अनुभव है ।

आदमी आदमी से डरता है, अतः आदमी आदमी से लड़ता है ।

कुत्ता कुत्ते से डरता है अतः कुत्ता कुत्ते से लड़ता है । यह तो समझ में आई हुई बात है । यही नहीं । भेड़ भेड़ से लड़ती है । गाय से गाय लड़ती है । लिहाफ के अन्दर में देवता हूँ कि भैंस से भैंस लड़ती है, मुर्गों से मुर्गा और तो और शांति का प्रतीक कबूतर कबूतर से लड़ता है । चाँच भिड़ाता है । मैंने कई बार शांति के मसीहाओं को अपने कमरे में कुश्ती करते हुए देखा है । चाँचों से चाँचें लड़ाते हुए, पंखों की फड़फड़ाहट करते हुए । मैंने बीच-बचाव के दौरान देखा कि लड़ाई का मुद्दा या तो कुछ दाने होते हैं या कोई कबूतरी । फिर बेचारे कुत्ते ही बदनाम क्यों ? कोई दूसरा कुत्ता न खा जाए, इसलिए कुत्ता जल्दी-जल्दी खाता है । कुत्ता दरियादिली दिखाए तो किस वृत्ते पर ? कुत्ता भी लड़ता है, पर वे ही दो मुद्दे, रोटी का टुकड़ा या हड्डी का टुकड़ा, या कोई कुतिया ।

कुत्ते रोते क्यों हैं ? सबाल सुलभाने से पहले नींद आ जाती है ।

सुबह उठता हूँ तो देखता हूँ कि कैंकेयी तो अभी तक कोप-भवन से बाहर ही नहीं निकली है ।

कुत्तों ने पति-पत्नी के बीच दरार डाल दी है । मैं इस विडम्बना पर विचार करने लगता हूँ ।

मैं सुबह का अखबार लेकर बैठ जाता हूँ । चाय की प्याली पास में । लवरेज । चाय खतम होने के पहले अखबार निगल जाता हूँ । अखबार निगल जाने के बाद एक पत्रिका के पन्ने पलटने लगता हूँ । यकायक मेरी भागती हुई आंखों में अटक जाती हैं कुछ पंक्तियाँ ।

‘कुत्तों का राजसी जीवन जिसके लिए इन्सान रक्षक करे...’

कोई कुत्ते-पालन का फार्म है । आला नस्ल के कुत्ते । उनके बच्चों का पालन-पोषण होता है वातानुकूलित कमरों में ।

मैं कुछ चित्र देखने लगता हूँ । छोटे-छोटे पिल्ले, फोम के गद्दों पर । नौकर-चाकर सेवा में । ओढ़ने को रजाइयाँ, खाने-पीने को पोष्टिक आहार । डाक्टरों की पूरी देख-रेख ।

में पूरा विवरण पढ़ने में लगता हूँ। इन पिल्लों की परवरिश जिस राजसी ढंग से की जाती है, उसे देखकर तो हर भ्रातृमी की इच्छा होने लगती है कि कान ! इस मनुष्य-योनि के बजाय तो इन कुत्तों जैसी कोई योनि मिली हुई होती तो कितना अच्छा रहता !

मनुष्य-योनि भी श्वान-योनि के सामने झल मारती है।

पत्रिका रख देता हूँ।

ये कुत्ते के बच्चे। उन्होंने पिछले जन्म में महान् तपस्या की होगी।

ये कुत्ते बड़े मेधावी हैं। कुत्तों के इतिहास में भी कई शानदार पृष्ठ हैं। सारे कुत्ते मेधावी ही रहे हों, ऐसी बात नहीं। गजब की किस्मत भी पाई बहूतों ने। मेरी स्मृति में कई कुत्ते उभरते हैं। एलीजाबेथ टेलर का नामी कुत्ता जिसकी शादी में इतना खर्च हुआ कि उसकी शादी के सामने राजकुमारी ऐन की शादी फीकी लगती है। उसकी शादी का वह जपन मनाया गया कि कुछ कड़ा नहीं जा सकता। क्या कमाल की किस्मत पाई है उस कुतिया ने, जिससे एलिजाबेथ का कुत्ता मुम होने जा रहा है !

कहते हैं कि एक श्वान-प्रदर्शनी में लीजो का कुत्ता प्रदर्शित हुआ तो लाखों में उमड़ पड़ों उस कुत्ते को घूमने के लिए। मालिक ने देखा कि ये मेमे कुत्ते को चुम्बन के बहाने घाट जाएगी। कुत्ते के चुम्बन की फीस लगाई गई। जब एक चुम्बन की फीस दस डालर रखी गई तो हजारों मेंमे के हाथ अपने पसों की रस्मिया ढोली करने लग गए। लीजो फिर भवराई। फीस बढ़ाकर भी डालर फी चुम्बन कर दी गई तो भी दस मेंमें मैदान से नहीं हटी।

यह भी किस्मत है कुत्ते की। कोई प्रिन्स चार्मिंग क्या करे ! ऐसा कुत्ता कौन-सी मौत मरेगा, क्या कोई ज्योतिषी बतला सकता है ?

यह तो एक ही पृष्ठ है। कुत्तों के इतिहास में ऐसे कई स्वर्णिम पृष्ठ हैं। जूनागढ़ के नवाब साहब को इतिहासकार चाहे किसी तरह याद करे, परन्तु जब कोई कुत्तों का ऐतिहास लिखेगा तो उसके ऐतिहासिक क्रिया-कलापों को नजर भ्रन्दाज नहीं कर सकता। उसके राज्यकाल में कुत्तों की शादी के शुभ भवसर पर राजकीय कार्यालयों में भवकाश रहा। दूल्हा बना हुआ कुत्ता जब बँट ब्राजो के साथ जूनागढ़ की सड़को से गुजरा होगा तो दर्शकों ने उस कुत्ते के भाग्य की सराहना की होगी। और, कितनी ही देबियाँ ने उस भाग्यशालिनी

कुतिया की तुलना में अपने-आपको हेय समझा होगा। अगर चोयस का सवाल होता तो बहुत मुमकिन है, बहुत सारी देवियां अपने संचित पुण्यकर्म और कौमार्य का श्रम्य देकर भी इस प्रकार की कुतिया बनने में अपना अहोभाग्य समझतीं।

अगर ये कुत्ते हैं तो उनका जीना और मरना भी बहुत कुछ ऐसा है जो मनुष्य को नसीब नहीं होता।

कई कुत्तों ने कई लड़ाइयों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और सरकारी तौर पर इनकी सेवाओं का उल्लेख किया गया।

सारी बातों से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि सब कुत्ते एक-से नहीं होते। कुत्तों में भी वर्ण-व्यवस्था होती है। कई कुत्ते कुलीन होते हैं। इसकी जानकारी लोगों को नहीं है। यही एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। कुत्ता धर्म का रूप होता है। यह तो धर्मराज ने भी माना है। कुत्ता और धर्म साथ जाते हैं, बाकी सब पीछे छूट जाते हैं।

एक फ्रांसीसी राजकुमारी को तो आदमी नाम से इतनी चिढ़ हो गई थी कि वह तो कुत्तों की जाति पर ही फिदा थी।

कुत्ता और आदमी के गुणावगुणों की तुलना की गई तो सभी लोग एक ही निष्कर्ष पर पहुंचें—

कुत्ता आदमी की हर ट्रिक सीख सकता है सिवाय एक चीज के। उसे खिलाने वाले हाथ को काटने की 'ट्रिक' नहीं आती। लोगों ने खूब सरपच्ची करके देखा। आदमी का इसमें कोई सानी नहीं।

कुत्ते की जाति जिस दिन लोप हुई, वफादारी नाम की चीज भी लोप हुई। यह एक भविष्यवाणी है।

मैं एक आन्तरिक खुशी अनुभव करता हूँ। मेरी आज तक की धारणा बदल जाती है। न कुत्ता हेय और न कुत्तों की तरह मरना व जीना। इन सब चीजों के बावजूद भी मेरी पत्नी का प्रश्न एक 'आउटस्टैंडिंग क्लेम' की तरह खड़ा है।

कुत्ते क्यों रोते हैं? क्यों चिल्लाते हैं? सवाल सरल करने के लिए मैं एक सवाल उठाता हूँ—आदमी भी तो रोते हैं? वे क्यों चिल्लाते हैं? आदमी तो देवता बनने का दम भरता है। आदमी का तो रोना शायद यह है कि आदमी और आदमी के बीच भेदभाव क्यों? रंगभेद क्यों? सब आदमी बराबर हैं तो कुलीनता का फिर आधार क्या?

शायद यही बातें कुत्तों के दिमाग में हों तो। आखिर भादमी और कुत्ते में कोई मूलभूत फर्क तो है नहीं। सब कुत्ते बराबर हैं, क्या साहब का, क्या सड़क छाय।

अलसेशियन, टेरियर, पोमेरियन वगैरह जाति-भेद बेमानी हैं। हो सकता है सड़क के कुत्तों ने रात में सलाह कर ली हो। और उन्होंने अपने विरोध के स्वर को ख दिया हो। सीधे कार्यवाही की बात बल रही हो। मगर मेरी पत्नी समझती है, कुत्ते रोते हैं। रोष के स्वर को रोने-धोने के सिवाय और कोई मरदा नहीं देते। मेरी समझ में बात प्रा गई।

मैंने उसे भावाङ्क दी—भायो, तुम्हें समझाऊं कुत्ते क्यों रोते हैं।

उसने मेरी तरफ देखा, मुझे लगा कि वह गुर्राएगी।

इसी बीच गली में कुत्ते फिर भौंकने लगे। ऐन वक्त पर कुत्तों ने बनी बात बिगाड़ दी। कुत्तों का यही दोष है। समझौता नहीं करने देते।

नाम में क्या धरा है

नोपा ने चाय लाकर रख दी और चुपचाप खड़ा हो गया, शायद इस श्रंदाज से कि शायद वह अपनी बात कहने के लिए किसी उपयुक्त अवसर की ताक में हो।

“और महाराजा !” मैंने चाय की प्याली उठाते हुए कहा।

नोपा एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, जिसके रिटायरमेंट में कुछ ही महीने बाकी रह गये हैं। सभी लोग उसे महाराज के नाम से सम्बोधित करते हैं। ऋषियों की सन्तान नोपा आज की सरकारी चतुर्वर्ण-व्यवस्था के अनुसार शूद्र हो गया। पाण्डित्य और विद्वत्ता कौनसी पीढ़ी में नोपा परिवार से मुक्त मोड़कर चले गये, पता नहीं, परन्तु ‘महाराज’ की पुस्तनी टाइल उससे छीनी नहीं गई, जबकि बड़े-बड़े महाराजा लुप्त हो गये और एकमात्र बचा हुआ महाराजा एअर-इंडिया में व्योम-परिचारिकाओं के साथ मजे कर रहा है और आसमान में उड़ता रहता है। महान पूर्वजों के वंशज होने के गौरव की अनुभूति भी उसे यदा-कदा होती रहती है जब श्राद्ध-पक्ष में या अमावस-पूनम के रोज उसे खाने का आमंत्रण मिल जाता है। साथ में दक्षिणा भी। खैर, कुछ भी समझो, लखनऊ के तांगे चलाने वाले नवाबजादों से तो नोपा महाराज का इतिहास किसी भी माने में घटिया नहीं है।

“तो, साहब, मेरे लड़के का क्या किया ? आपकी तो ज़रा-सी जुवान हिली और हमारा भला हो गया। आज़ाद हिन्दुस्तान में ‘आई. ए. एस. बनना आसान है, परन्तु एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी बनना टेढ़ी खीर है। पंचवर्षीय योजनाओं के लिए साधन जुटाने के लिहाज से सरकार के लिए चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के पद के सृजन पर रोक लगाना आवश्यक हो गया था। ऐसी हालत में योग्यता के आधार पर पद पर नियुक्ति होना असंभव है। लोग इसके लिए मिनिस्टर्स की

चिट्ठियाँ जब मैं डाले हुए घूमते हैं। फिर ऊपर से टेलिफोन झलक।" नोपा ने नपे-तुले धब्बों में निवेदन किया।

"कैसा है तुम्हारा लड़का? तुमने पूरी बात तो बताई ही नहीं थी।" मैंने चाय की चुस्की लेते हुए कहा।

"कैसा है, समझ लीजिए धरजन जैसा ही फरजन होगा।" नोपा ने मुस्करा-हट के साथ बात को भागे खींचा।

यह कहावत तो मैंने बचपन में तपा बाद में भी बहुत बार सुनी थी, परन्तु आज तक मेरी समझ में नहीं आई कि यह 'फरजन' कौन था। चलो, 'धरजन' तो धरुन ही होगा। महान पांडव का धपग्रंथ रूप, परन्तु यह फरजन कौन था, समझ में नहीं आया। इसपर कई बार सोचा भी कि फरजन महाभारत के कौनसे पात्र का नाम हो सकता है। कुछ घनों बाद बात में भूल पड़ गई। परन्तु नोपा के मुँह से आज जब यह बात सुनी तो बात का मुँहा तो मूल गया और पूछ बैठा...

"महाराज, यह फरजन कौन था?"

"यह तो आपकी मालूम होगा। पढ़े-लिखे तो आप हैं। पढा-लिखा आदमी ही बात का खुर-खोज निकल सकता है, बही भाटा हो तो सुलझ सकता है। मैं जाति का ब्राह्मण हूँ मगर पूरा घंगूठाछाप, एक चतुर्यं श्रेणी कर्मचारी। मेरे पूर्वजों के हाथ में कलम रही होगी पर मेरे हाथ में है झाड़ू। मैंने तो बात सुन रखी थी, सुनी-सुनाई बात आपको सुना दी। आप जानें धरजन और फरजन में क्या रिश्ता होगा। मेरी मोटी धक्कल से तो कोई नखदीकी रिश्ता होना ही चाहिए।"

नोपा ने एक सटीक ब्याख्या कर दी।

"बात की समझता चाहिए टेठ उसकी जड़ में जाकर। ऐसे कैसे कोई बात कह दे। तमाशा घोड़े ही है महाराज!" मैंने एक शाम लहजे में बात बही।

"तब तो हम जैसे लोगों का जीना मुश्किल हो जाएगा," नोपा बोला।

"कित तरह?" मुझे आश्चर्य हुआ।

"यह इस तरह," नोपा ने कहना शुरू किया, "कि आप मान लो पूछने लगे कि नोपा का क्या मतलब हुआ? आपके हिसाब से तो सीधा-सा मतलब यह हुआ कि जब मेरा नाम होगा है तो मुझे नोपा शब्द का अर्थ भी मालूम होना चाहिए।"

विनोद को पुट देने की कोशिश की।

“फिर वही फरजन। यह फरजन नहीं फर्जन्द है, रास फारसी का बन्द और तुम चिल्लाये जा रहे हो फरजन फरजन।” मैंने एक ब्याकरण की तरह बात की।

“क्या फर्क पड़ता है। राम-राम कहो या मरा-मरा, भाव शुद्ध होना चाहिए।” नोपा ने एक सफाई पेग की।

“नहीं महाराज, हर शब्द का अर्थ होता है, उसका मतलब होता है।” मैं अपनी बात पर डट गया।

“तो फिर मेरे नाम का भी अर्थ होगा?” नोपा ने मेरी तरफ देखा।

“होगा क्यों नहीं। कोई शब्द निरर्थक नहीं होता।”

“तो फिर मेरे नाम का ही अर्थ बताइए। अट्ठवन साल से यह नाम मेरे से चिपका हुआ है, एक भूत की तरह, पर मैंने यह कभी नहीं सोचा कि मेरे नाम का भी कोई अर्थ होगा। यह तो एक बन्द कमरे की तरह से रहा जिसे मैंने कभी खोला नहीं। एक बन्द गद्दरी जिसे मैं ढोता तो रहा पर यह देखने की कोशिश कभी नहीं की इस पिटारे में क्या है? मैंने तो आज तक यही समझा था कि नाम एक नकेल है, लगाम है, एक तरह का जुआ है। ऊंट के लिए नकेल एक इशारा है। घोड़े के लिए लगाम। वैसे ही आदमी के लिए नाम। एक इशारा हुआ, नकेल खींची कि ऊंट ठहर गया। लगाम खींची कि घोड़ा ठहर गया। किसीने आवाज लगाई, ‘नोपा महाराज’ और मैं ठहर गया। पर जब आप कहते हैं कि नोपा का भी अर्थ होता है तो मेरी इच्छा होती है कि जानूँ कि वह कौन-सा अर्थ है। मैंने नाम का बोझ ढोया, पर अर्थ की बात सोची ही नहीं। हाँ, तो फिर क्या अर्थ हुआ?” नोपा की जिज्ञासा भड़क उठी।

“तुम्हारे नाम की सन्धि तोड़नी पड़ेगी, नोप का मतलब हुआ न+उप यानी नोप या नोपा। इस हिसाब से नोपा का मतलब हुआ कि तुम्हारे जैसा कोई नहीं, यानी वेजोड़, अनुपम, अद्वितीय, बेमिसाल, बेनज़ीर, फड्डी, लासानी।” मैंने इतने सारे पर्यायवाची दे दिये जितने कि शायद अमरकोश में भी नहीं दिये गए हों।

“मेरे छोटे-से नाम के इतने अर्थ हैं। अगर मेरे मां-बाप को इतने अर्थों का पता होता तो वे शायद इतना बड़ा बोझ वाला नाम मेरे सिर पर नहीं रखते। देखादेखी में गलत नाम घर दिया गया।” नोपा महाराज बोला।

“तुम बेजोड़ हो, महाराज ।” मैं बोला ।

“रमण तो कोई राज नहीं । मैं इन माने में तो बेजोड़ हूँ कि मेरे जितने बड़े जुने किसीके नहीं माने । कोई सम्पत्ती मेरे पास के जूते नहीं बनाती । मोची तो झगड़ा करते पगर जुने छोड़ दूँ तो उगबो ही रोना पड़े । धर तो जरा उमर का मिहाड़ का बाठा है बर्ना बिना देसगी निचे कभी किसी मोची ने मेरे जुने नहीं बनाये । यह है मेरा रिवाजे ।” नोपा ने हँसो के साथ बात बही ।

“यह तुम्हारे नाम का ही पगर है ।” मैंने भी एक तुल्य बिना दी ।

“आज सोच पड़े-मिसे है, आज सोचों के चार घाँसे होती है । अभी कुछ दिन पहले एक हाथ की रस्ता देतने वाला मिना घोर हाथ देगकर बहने लगा कि मुम्हारी भाग्यरेता जोरदार है । मुझे धन्दर हँस धन्दर हगी माने सगी घोर धन्दर में मुझने रहा न गया घोर बह ही दिया कि मेरी भाग्यरेता तो जोरदार सब मानू जबकि मेरी भाङ्गू सोने की हो जाये, बर्ना तो रोड भाङ्गू सगाने वाला तकदीर की भी भाङ्गू-मोँछकर रग देना है । यह भी दंगो तो सही कि इस भाङ्गू की तकदीर में भी सोने का होना निगा है कि नहीं । हस्तरेगा देगने वाला गज्जग रिदर में मेरा हाथ देगने लगा । रेगाघों में तथा रेगाघों के बीच छुपी हुई तकदीर देगने लगा घोर बृछ देर बाद बोला कि घण्टी भाग्यरेता के बावजूद भी हुयेसी के बी-बीबीष एक गहड़ा है घोर तकदीर जाकर गहरे में पड़ गई । मुझे उसकी बात जम गई । हुयेसी के गहरे के घलाया और भी गहरे है जिन्हें भरने की मैंने कोनिग की, जिन्ही-भर । पर सट्टे तो नहीं भरे घोर धर तो गालों में भी सट्टे घोर पड़ गये ।” नोपा महाराज का स्वर गम्भीर हो गया ।

“महाराज । मुम्हारा नाम तो जोरदार है, यह मैं बहता हूँ ।”

“नाम में क्या धरा है । नाम में कोई बालूद होता तो कभी का पटाणा बन गया होता जो घात्र तरु समर नहीं दिया गया, धर क्या होता है ?”

“महाराज, मुम्हारी बात की तो दोषगणियर ने भी कहा है, जब उसने कहा किनाम में क्या धरा है, गुलाब की चाहे जिस किनी नाम से भी पुकारो, गुलाब तो गुलाब ही रहेगा, गुलब देना रहेगा...”

मैंने जान पूरी भी नहीं की थी कि नोपा महाराज जोर से हंसने लगा । मुझे लगा कि नोपा वहीं पागल तो नहीं हो गया है । उसके दिमाग पर एक प्रेशर तो था ही । मैं उसके चेहरे की घोर देगने लगा ।

“महाराज, ऐसे क्या मिल गया जो इस तरह से हंसने लग गये।” मैंने कहा।

“कुछ नहीं, कुछ नहीं।” नोपा ने हंसी रोकने की कोशिश की।

“ऐसे नहीं, महाराज, बात बताओ।” मेरा आग्रह जारी था।

“आप कह रहे थे कि हर शब्द में एक अर्थ होता है। नाम में भी अर्थ होता है और इसी बीच शेरसपियर कूदकर आ घमका और कह दिया कि नाम में क्या घरा है। यानी पहले वाली बात तो ही गई ‘काता कूता कपास’। पढ़े-लिखे लोगों की बातें इसीलिए तो अनपढ़ों की समझ में नहीं आती। घोड़ा और गदहा दोनों तैयार रखते हैं। पता नहीं किस समय किसको किसपर बैठा दिया जाये।”

मैं नोपा महाराज की आंखों में देखने की कोशिश करने लगा, परन्तु महाराज ने आंखें नीचे कीं और वाहर निकल गया।

मैंने नोपा को कमरे में झाड़ू लगाते हुए बहुत बार देखा है। वह झाड़ू से समेटता हुआ कूड़े-कचरे को एक जगह इकट्ठा कर लेता है। सारा कूड़ा-करकट सिमटकर एक जगह आ जाता है।

मुझे आज ऐसे लगा कि उसने आज वह झाड़ू कमरे के बजाय मेरे दिमाग में लगा दिया। कमरे की तरह दिमाग में भी कूड़ा-कचरा होता है जिसको नोपा महाराज ने ढेरी कर दिया। अब इसको फेंकेगा कौन? मैं या महाराज। मैंने आवाज लगाई, “महाराज, महाराज।”

“महाराज तो पान लाने बाजार गया है,” चौकीदार अब्दुल्ला बोला।

“ठीक।” मेरे मुंह से निकल गया।

पता नहीं, क्या सोचकर मैं छत की तरफ देखने लग गया। शायद छत पर कुछ लिखा हुआ हो।

बिल्ली ने आत्महत्या कर ली

हमने एक बिल्ली पाली । देखा जाए तो संयोग ही ऐसा बैठा कि हमें बिल्ली पालनी पड़ी । संयोग ही सब करवा देता है जिसे बड़े-बड़े ज्योतिषी भी मानते हैं ।

एक दिन एक बिल्ली की बच्ची हमारे घर आ गई । उसकी हालत एक ऐसे घनाथ बच्चे की तरह थी जिसके मा-बाप मर गए हों, बिल्कुल एकाकी । उसकी म्याऊँ-म्याऊँ भी एक दबी हुई आवाज में । हमें दया आ गई । पर वह हमसे बड़ी ही शंकित थी । शायद उसके साथ पहले कोई 'चट्टी' या ठगी हो गई हो । वह ठण्डे दूध को भी ठहर-ठहरकर पीती थी । मेरी लड़की ने सुझाव दिया कि बिल्ली को 'अडोप्ट' कर लिया जाए और उसकी परवरिश ठीक ढंग में हो । जहाँ तक 'अडोप्ट' करने का सवाल था, हम घर में सभी एकमत थे, परन्तु बीबी को एक भाशंका थी और वह अपने स्पष्ट शब्दों में सामने रख दी, बिना किसी लाग-सपेट के ।

"बिल्ली पालने का मतलब यह होगा," उसने कहना शुरू किया, "कि गली के सारे कुत्तों की आँखें हमारे घर पर लगी-रहेंगी । हर समय कुत्तों के बारे में ही सोचते रहना शरीफ़ घरों का काम नहीं । दूसरी बात यह भी है कि कुत्ते धाने हैं दबे पाव, बड़े चुपकेसे, चोर की तरह ।"

अन्त में तय यह रहा कि कुत्तों के भय से बिल्ली को कुत्तों के सामने कैम फँका जा सक्त है । बिल्ली के लिए एक स्थान सुरक्षित कर दिया जाए और यह भी तय रहा कि जब तक बिल्ली पूरी बालिग न हो जाए, उसे दिन में बाघकूर रखा जाए और रात्रि में उसे पूरी आजादी हो ।

इस छोटी-सी बिल्ली ने हमें बड़ा प्रभावित किया । एक होनहार बिल्ली के सभी गुण उसमें नजर आए । बिल्ली इकरंगी नहीं थी । बिल्ली की तीन सम्भत्ताओं

का सम्मिश्रण । बड़ी ही सफाई-पसन्द । पास में रमे हुए 'कुण्डे' को ही 'टायलेट' की जगह काम में लेती ।

थोड़े ही समय में घर के सभी सदस्यों से घुलमिल गई । इतनी घुलमिल गई कि जैसे इस बिल्ली के साथ जन्म-जन्मान्तर से सम्पर्क बना था रहा हो । मेरी पत्नी से तो, गाम तीर पर उसकी ब्रह्मूत ही पटती । वह भट से फुटकर उसकी गोदी में जा बैठती । धक्का देने पर भी हटती नहीं । मुझे एक दिन की बात याद है । बिल्ली उसकी गोद में बैठी हुई थी और वह बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेर रही थी । वह भी जगकर बैठी हुई अपनी पूंछ हिला रही थी । मुझे एक मजाक मूझा ।

“बड़ी ही अजीब बात है कि दो बिल्लियां लड़ती नहीं । उल्टे एक-दूसरे से प्यार कर रही हैं ।” मैंने अपना हृथगोला फेंका ।

“दो कहाँ है, एक ही तो है ।” मेरा गोला फूटा नहीं । मेरी पत्नी बात समझी नहीं । विस्फोट होने से बच गया ।

“देखो, अंग्रेजी में 'कैट' का मतलब औरत भी होता है । औरत और बिल्ली समानधर्मा हैं, शास्त्रों में भी लिखा है ।” मैंने बात संक्षेप में ही कही । छोटा-सा तूफान उठा और बैठ गया ।

“शुरुआत में तो हमने बिल्ली को 'मिनकी' से सम्बोधन करना शुरू किया परन्तु ज्यों-ज्यों वह प्रिय से प्रियतर होने लगी, उसका नाम भी संशोधित होता गया मिनकी से मिनाकी बनी और मिनाकी से आगे चलकर बन गई मेनका । मेनका शब्द सुनते ही कान ऊंचे करके दौड़ी चली आती । मेनका को अपना नाम पसन्द जरूर आया होगा । तब ही तो जब किसीने पुकारा 'मेनका' और वह भट से म्याऊं-म्याऊं के साथ खुद ही हाज़िर हो जाती । बड़ी ही द्रुतगति से उसने पारिवारिक सदस्यता प्राप्त कर ली । एक दिन मेरी लड़की ने सुझाव रखा कि उसका नाम राशनकार्ड में जुड़वा लिया जाए । आपत्ति की बात तो खैर इसमें थी भी नहीं । उसका तर्क था, “जब लोग तो मरे हुए व्यक्तियों को भी राशन कार्ड में मरने नहीं देते, फिर मेनका का नाम क्यों न हो ?”

इस बात पर हम सभी हंसे । खूब हंसे ।

मैंने इस बात पर एक चुटकला सुनाया ।

“एक औरत ने अपने पति से 'नथ' बनवाने का अनुरोध किया तो पति बोला

कि मेरा इरादा तो तेरा नाक काटने का है।”

एक बार फिर हम सब सोचेंगे। मेनका न जाने क्या सोचकर फूटकर मेरी गोद में धा धमकी। चायद समझ गई हो कि राशन का यह स्केल भी बना रहे तो गनीमत है।

“भायबा घुटवला तो मेनका को भी पसन्द थाया।” मेरी लडकी की टिप्पणी।

मेनका के धाने में हमारे पर में गुधी की लहर द्रा गई। मगर सबसे बड़ा पत्रपदा तो यह हुआ कि एक गहून रहस्य की बात समझ में धा गई। बुद्ध को ऐसी बात तो हाइ-मांग गनाकर समझ में धाई थी।

मैंने पढ़ा था, कई बार घोर कई जगह पढ़ा था कि पण्डित नेहरू ने हिमालयी पण्डा पाल रगा था। कई दिनतक तो मैं यहीं गगभता रहा कि नेहरू एक पण्डित है घोर इगलिए एक पण्डे की तरफ उनका रुझान होना स्वाभाविक है। मन में एक बात घोर जमी हुई थी। कहने को कोई कुछ भी कहे। जात-पात न मानने की सम्बन्धी-धोड़ी धोषणाओं के बावजूद भी एक पण्डित का एक पण्डे के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक है। इतने इन्कार नहीं किया जा सकता। धगर कोई कल्ला है तो दिमागी तौर पर वह ईमानदार नहीं है। पाती से धून गाढ़ा होता ही धाया है। स्वाभाविक आकर्षण के कारण ही पण्डितजी पण्डे को धपने हाथ से विलाने हैं घोर धपने इतने व्यस्त कार्यक्रम में से कुछ समय पण्डे के लिए निकालते हैं, यह मेरी धारणा थी। पर एक सवाल रह-रहकर उठाता। “क्या पण्डा पगु है जो पण्डितजी धपने हाथ से विलाने में पुण्य-नाम मानते हो।” मैंने कई बार सरपच्छी की पर फिर भी पूरी बात समझ में नहीं धाई।

कुछ दिन बाद एक दिन भगवार में विजय देखने को मिला। पण्डितजी पण्डे को मिला रहे हैं, पण्डा तो किसी पण्डित का सगोत्री न होकर जामवन्त का वंशज निवन्ना। मुझे बडी हसी धाई। देश के इतने बड़े धादमी के पास धादमियो से मिलने की तो फुरसत है नहीं। मगर जामवन्त के वंशज का धातिष्य सरकार करने को समय है, किमी गुरिल्ला या जिर्जाफ के लिए समय का धभाव नहीं। बड़े धादमी की सनक! कोई कहे तो क्या बहे? बड़े धादमी सनक पालते हैं। मेरी समझ में बात धा गई।

बहुत कुछ सोचा तो एक बात घोर समझ में धा गई कि पण्डित नेहरू ही

एकमात्र सनकी नहीं थे। हर बड़ा आदमी सनकी होता है। घमंराज युधिष्ठिर कुत्तों के शौकीन थे। अपने कुत्ते के लिए स्वर्ग तक छोड़ने को तैयार हो गए। एडवर्ड ग्रैटम ने तो अपनी मननाही बीबी के लिए राजगद्दी ही छोड़ी थी और लोगोंने दांतों तकें अंगुनी दवा ली। न्यूटन का कुत्ता कितना अलाम था परन्तु फिर भी प्रिय। इतिहास भरा पड़ा है। कोई तोते का शौकीन है, (हीरामन को कौन नहीं जानता?) तो कोई उल्लू का शौकीन, तो कोई स्यामी बिल्ली का। और तो और, भोलि धम्भू अपने नान्दी को नहीं छोड़ सकते। देवताओं ने गजब ही कर दिया। किसीको ढंग का जानवर नहीं मिला तो भैंसा ही पकड़ लिया। गणेशजी की 'चोयस' चूहे पर पड़ी। ऐसे गणेश को पूछकर हर कार्य का श्रोगणेश करते हैं। कमाल है। क्या कोई कुएं में भांग पड़ी हुई है? पर इसके पीछे कोई कारण भी रहा होगा, मेरी समझ में नहीं आया।

पर मेनका ने मुझे आत्मज्ञान दिया। जब वह मेरी गोद में बैठ जाती या रात को मुझसे चिपककर सो जाती तो मैं भाव विह्वल बना कभी उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगता तो कभी उसके सिर पर। उसके स्पर्श में बिजली का करण्ट। एक विशेष प्रकार का स्पन्दन। एक ऐसा अनुभव जो आदमी नाम के जानवर के सम्पर्क से कभी प्राप्त नहीं हुआ था। 'वाह री मेनका' कहकर मैं उसे प्यार से गले लगाता तो वह भी अपनी आंखें मेरी आंखों में गड़ा देती और मूक भाषा में बहुत कुछ कह जाती। शब्दों में ढाला जाए तो उसकी मोटी अभिव्यक्ति यही थी कि वह आत्मसात् होना चाहती थी। न कोई प्रतिदान, न कोई प्रतिफल। काश! कीट्स को, जो 'सेन्सेशनस' की तलाश में किसी बुलबुल के पीछे दौड़ता रहा, कोई मेनका मिली होती!

मेनका की मधुर म्याऊं-म्याऊं से चिरन्तन रहस्य की पहली पर्त खुली। मेनका व उसकी विरादरी प्यार को न तो एक्सप्लोइट करती है न ब्लैकमेल और न किसी प्रकार का कर्मिश्यलाइजेशन। छोटा-मोटा हर आदमी प्यार करना चाहता है। अपने-आपको अपने ही ईगो से रिलीज करना चाहता है। बेलगाम होकर, सारी थोपी हुई तथा विरासत में मिली हुई मजदूरियों और मान्यताओं को दूर रखकर संलाप करना चाहता है। पहुंचे हुए सन्त और योगियों के बारे तो कहा जाता है कि वे अपने-आपको 'डिसेम्बल' करते हैं। घड़ कहीं तो सिर , हाथ कहीं तो पांव कहीं। पर ऐसे समय में किसी भी व्यक्ति को साक्षी होने

का व्यवहार नहीं होते। हर भादमी घनेले में तबासत करना चाहता है। एक नई ऊर्जा की तलाश में। हर बोझ होने वाला जानवर, चाहे ऊंट हो या गधहा, दिन-भर बोझ होने के बाद रात में 'सिटना' चाहता है ताकि वह तरोताजा हो जाए। कोई भी बर्तौपारी खोजीय धष्टे बर्तौ धारण किए हुए नहीं रह सकता, बर्तौ वह धक्का जाएगा।

हर बड़ा घादमी भी कुछ धान ऐसे चाहता है जो सही माने में उसके हों। वह चाहे तो बिनौल बरे, बिनवारियां मारे, बिनना की सारी बर्दियां, बेल्ट बगैरह हटाकर, एच गदहे की तरह रात में सोट मके। कुछ बातें कर सके ऐसी भाषा में, बिननी घामर उगधी गूद की बनाई हुई हो। उन्मादीं और धावेगीं को टोचकर रस मके, छीटी बजाकर। ऐसे धाणों को वह किसी भादमी के बच्चे के साथ 'सेधर' करने को तैयार नहीं। इसके लिए कोई उपयुक्त पात्र हो सकता है तो वह होगा कोई पशु, स्वामी बिल्ली, ब्रूम, कुत्ता। ये निष्पाप जीव न तो स्थिति को 'एवत-प्लोपट' करते हैं और न 'भनेकमेलिंग' जबकि भादमी का बच्चा तो इसके घावा और कोई पीड़ जानना ही नहीं। मेनका के अत्यधिक ध्यार से ही मुझे यह सब कुछ जान हुआ। मैं बूढ से बड़कर प्रबुद्ध हो गया।

दिन मे रस्ती मे बपी हुई मेनका रात मे घावादा हो जाती। बिल्ली बंश की सारी परम्पराएं व प्रवृत्तियां उसके लून मे थीं। बूहों पर भागटने की सटजात कला व कापेंकुदालता के बिकसित होने में कोई घेर नहीं लगी। वह अपने 'सेधर' टाहम में बूहे पकटने की टैविटक्स का अभ्यास करती रहती थी। रुई की गेंद हो या कोई खबर की गेंद हो, उसे बूहा मानकर बडी मुस्तैदी के उसपर भागटती। एक दिन मेने उसे बूहे का सिवार करते देना। एक बड़ा भारी बूहा, जिसने कई छोटे-मोटे बूहे भाए होंगे। बहुत सारे पिस्सुपों का जनक। प्लिंग का व्यापारी। इससे मुझे यह धात तो जंच गई कि मेनका धव पूर्णतया स्वावलम्बी है। उसे किसीकी दया की दरकार नहीं। उसका धपना कैरिअर है। मेनका खुद अपने बने पर जी सकती है।

एक दिन स्वामि धाया कि मेनका की रस्ती छोटी पड़नी है, उसको एक लम्बी डोर दी जाए। बड़ी रस्ती ला दी। धव उसके धुमने की परिधि बडी हो गई। लम्बी डोर देने के पीछे मूल मकगद तो इतना ही था कि उसका क्षेत्र विस्तृत हो। उसको घाजादी सीमित न रहे और स्वायत्तता का क्षेत्र भी कुछ बड़ा हो जाए।

फिर वही संयोग की बात । एक दिन मेनका खूँटी से लटक गई । मेरी लड़की ने देखा तो वह हकला-बकला रह गई और चिल्ला उठी, "मेनका ने आत्महत्या कर ली ।"

हम सब भागकर मेनका के कमरे में गए तां देना कि रस्सी खूँटी में अटकी हुई है और मेनका लटकी हुई । मेनका की पिछली टांगें मुंह की तरफ खिंची हुई तथा गर्दन झुकी हुई ।

मेनका नीचे उतारी गई । पानी छिड़का गया । मेरी लड़की भागकर हमारे पड़ोसी डाक्टर को बुला लाई । डाक्टर आया ।

डाक्टर को मैंने सारी बात बताई और स्थिति समझाई । मुझे ध्रुव भी भरोसा नहीं हो रहा था कि मेनका मर गई है ।

"देखिए तो सही, डाक्टर साहब । क्या हमारी विल्ली सचमुच मर गई ? क्या किसी प्रकार की 'मसाज' करने से यह जी सकती है कि नहीं ?" मैं अपनी व्यग्रता को छुपाने सका ।

"विल्ली तो मर चुकी," डाक्टर ने औपचारिक तौर पर विल्ली को मृत घोषित कर दिया ।

मेनका ने आत्महत्या किन कारणों से या किस हालत में की होगी, क्या आप इसपर रोशनी डाल सकेंगे ? मुझे ऐसा कोई कारण नजर नहीं आया जिससे उसे आत्महत्या करने की नीवत आ पड़ी हो । हमारा न इससे किसी प्रकार का झगड़ा था और न किसी प्रकार का मनमुटाव । मैंने अपने मन की बात कह दी ।

"बुरा न मानिएगा, आपकी मेनका मूर्ख थी मूलतः । मगर आपने दो-चार हरकतों के आधार पर उसे अकलमन्द समझ लिया और उसे सर्टिफिकेट दे दिया अकलमंदी का । सही माने में मेनका के मरने का कारण आप हैं ।" डाक्टर ने बम फोड़ दिया ।

"यह आप क्या कह रहे हैं डाक्टर साहब ? मैं हूँ मेनका की मौत का कारण ?"

मैं डाक्टर साहब के मुंह की तरफ देखने लगा ।

"देखिए, यह तो जग-जाहिर है कि आप मेनका को चाहते थे, मेनका पर फिदा थे । नतीजा इसका यह हुआ कि मेनका को आप एक मेग्नीफाइंग ग्लास से देखने लगे । पर वह सही शकल तो थी नहीं । डाक्टर ने बात पूरी भी न की कि मेरे मुंह से निकल गया, 'एँ ।'"

“ऐ” की बात नहीं। आपने उसे लम्बी डोर दी कि नहीं?” डाक्टर बोला।

“हां।”

“आपको मंशा तो यही थी कि आपकी मेनका तबियत से धुमे, उसको कोई तकलीफ न हो?”

“हां।”

“पर आपने यह कभी नहीं सोचा कि मेनका इसके काबिल न थी। मूख को लम्बी डोर देने का मतलब यह होता है कि आप उसे फासी खाने की प्रेरणा दे रहे हैं?”

“पर मेनका मूख नहीं थी। यह मेरी सकारण धारणा है।”

“तो फिर सी चूहे खा लिए होगे?” डाक्टर ने बात को ट्विस्ट किया।

“मान लू कि सी चूहे खा भी लिए हों, पर उसमें क्या?” मैंने तक की बांह पकड़ी।

“सी चूहे खाने के बाद बिल्ली या तो हज्र को जाए या हारीकीरी करे। आपकी बिल्ली ने हाराकीरी कर ली, यों मान लो।” डाक्टर ने बात गले उतारने की कोशिश की।

“मेरा तो भव भी सयाल है, मेनका ने प्रात्महत्या की है।”

“अच्छा हुआ कि आपकी मेनका मर गई, वना आपको मरना पड़ता था मेनका की जगह किसी और को मारना पड़ता,” डाक्टर ने घमाका किया।

“मैं यह क्या मुन रहूँ, डाक्टर साहब। मेरे कानों में कोई गड़बड़ तो नहीं हो गई है?” मैंने कानों को दोनों हाथों से दबा लिया।

“कानों को दबाओ मत, कानों को खोलकर सुनो।” डाक्टर गरजा। “प्यार की सीमा होती है,” पर जब उसकी सीमा और सीलिग का अतिक्रमण होता है तो प्यार भी ‘रेड’ में आ जाता है। ‘रेड’ का माने आप समझते हैं—‘घतरे का रंग’।

“डाक्टर साहब, आप तो पहलिया बुझ रहे हैं?” मैं गिड़गिड़ाया।

“आप तो बड़ी ही ऊकचूक बात कर रहे हैं। मोथे-बो के मुह से जब दोस्म-पोयर ने कहा कि मैंने उसे (डेविडेमोना) प्यार तो खूब किया, पर बुद्धिमानी से नहीं, तो इसका सीधे-सादे शब्दों में मतलब क्या था? समझने की कोशिश करो।”

“क्या था?” मेरे मुह से निकल गया। मैं हक्का-बक्का।

“एसका मतलब यह था कि चौबीस कैरट का या सौ टंचों का सोना बेकार है यदि उसमें कुछ तांबे या चांदी भी कुछ मिक्चर में मिला नहीं मिली हुई है। साइकिल में ब्रेक होना ही चाहिए। सब्जी में कुछ नारापन (नमक) होना ही चाहिए। प्यार में बुद्धि का कुछ पुट तो होना ही चाहिए वना...”

“वर्ना ?” मेरे मुंह से निकल गया। मैं अवाकू।

वर्ना प्यार पागलपन बन जाएगा। बिना बुद्धि का प्यार बिना नमक की सब्जी है। बुद्धि प्यार का विटामिन है, आंखें हैं, टांगें हैं। बिना बुद्धि प्यार अन्धा है। अन्धा कुएं में गिरता है, कुतुबमीनार की ऊंचाई पा भी ली तो गिर पड़ता है। एक घम से। चौबीस कैरट के सोने के आभूषण वैसे ही होते हैं जैसे बिना रीढ़ की हड्डी के शरीर। चाहे जिंघर मुड़ जाते हैं, चाहे जैसी शकल अस्तिवार कर लेते हैं। हर चीज होलडॉल हो जाती है और इसलिए ही तो उसमें तांबा मिलाया जाता है ताकि उसमें कड़क रहे। उसकी शकल विगड़े नहीं। प्रेम व्यंजन है तो बुद्धि लवण। लवण लावण देता है।

डाक्टर शायद भाषण झाड़ता ही जाता पर मैंने बीच में अपनी तरुण मार दी।

“प्यार के साथ बुद्धि का मेल नहीं, आप कुछ भी कहें।”

“तब तो, फिर कुतुबमीनार पर आखिरी मंजिल पर चढ़ने की मुमानियत बनी रहेगी। मेनका मरती ही रहेगी”—डाक्टर ने दार्शनिक भाव से बात पूरी की।

डाक्टर ने छुट्टी ली, उसे जाना था किसी जरूरी काम से।

उस दिन के बाद जब कभी भी सखवार में किसीकी आत्महत्या की बात पढ़ता हूं या कोई चर्चा सुनता हूं तो मेनका मेरे दिमाग में फिर से जी उठती है और डाक्टर की बात ताजा हो जाती है। मैं मेनका का पोस्टमार्टम शुरू कर देता हूं। इस दिमागी पोस्टमार्टम के दौरान सूक्ष्म आंखों से देखता हूं कि किसी भी आत्महत्या की स्थिति अपरिहार्य नहीं होती, बचाई जा सकती है। हर आत्महत्या के पीछे जिम्मेवार होते हैं कुछ अदृश्य हाथ और एक अदृश्य रस्ती। मैं मानस चक्षुओं से यह सब कुछ देखता हूं। साइकिल के ठीक समय पर ब्रेक लग जाए तो संभावित एक्सीडेंट टाला जा सकता है।

मैं आज भी उस स्थल पर जाने से वचता हूं जहां मेनका रहती थी। उस

खूटी पर कोई चीज नहीं टागता जहा मेनका टग गई थी। खूटी मे एक क्रोस टगा हुआ है जिसे मेरे सिवाय कोई नहीं देल सकता।

मेनका की रूह आज भी ठम कमरे मे घूमती रहती है। मुझे कमरे मे आज भी उसकी म्यां-म्या सुनाई पड़ती है जबकि मेरे घर में कोई इस बात को मानने को तैयार नहीं। उन सबके अनुसार यह मेरा भ्रम है। मेरी हालत हेमलेट की है।

डेनमार्क के राजकुमार हेमलेट की पीड़ा मे अनुभव करते लगता हूं। हेमलेट अपने बाप का भूत देखना चाहता था। मैं हेमलेट बन जाता हूं और चाहता हूं कि मेनका का भूत उतरकर आए और बतलाए कि उसने खुदकुशी की या उसे मेरी बेवकूफी से मरना पड़ा। हेमलेट की तरह 'टु बी' और 'नोट टु बी' के चक्कर में फसता ही जाता हूं। एक आवाज अन्दर से आती है।

यह भी हो सकता है कि मेनका ने जानबूझकर कुरबानी दी हो, मेरे लिए, मेरे ही हित मे।

जीवनकाल मे मुझे एक रहस्य समझा गई कि पंडित नेहरू के पण्डा पालने के पीछे भूत बात क्या थी।

परकर एक दूसरी बात समझा गई कि प्यार की परिधि व कुछ सीमाएं होती हैं। सीमाओं का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए। डाक्टर मे मेनका का ही भूत बोल रहा था बना 'डागर डाक्टर' इतनी सारी बात कैसे कह सकता था।

मुझे कुछ पदचाप सुनाई दिए। लगा कि डाक्टर आ रहा है।

मैंने अखबार उठाया तो मेरी नजर 'एक वाक्स न्यूज' पर टिक गई...

"कुतुब मीनार से गिरकर एक युवती ने आत्महत्या कर ली," मैंने अखबार फेंक दिया। इस महीने की यह तीसरी आत्महत्या थी। पढ़ने की कोशिश ही नहीं की।

एक सिगरेट निकाली। धुमा निकालने लगा। घुएं के चित्र बनने लगे और एक घूमिल चित्र टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं। एक शब्द पढ़ सकता हूं घुपता-छा—
श...हा...द...त। धुमा उड़ाने के लिए फूक मारता हू। साहादत गायब।

सब एक हो जाओ

“हलो, छोटू, क्या हाल-चाल है ? चंगा ?” मैंने दूकान में घुसते ही छोटू से सवाल किया ।

छोटू मेरा पुराना बारबर । उस समय से जब मेरे बाल एकदम जेट ब्लैक थे । उस समय से आज तक मेरे आसपास बहुत सारी तब्दीलियां आ गई हैं और आती ही जा रही हैं । उस समय का प्राइस इण्डेक्स और आज के प्राइस इण्डेक्स का मुकाबला ही नहीं । सरकार ने तंग आकर ‘वेस यीधर’ ही बदल दिया । परन्तु छोटू आज भी मेरा बारबर । मेरे और छोटू के सम्बन्धों में कोई तब्दीली नहीं ।

“कर क्या रहे हैं ?” छोटू कहने लगा, “वही पुराना धन्धा । लोगों की ठुड्डी सहलाते हैं और दुनिया की ठुड्डी सहलाते-सहलाते अपनी ठुड्डी सफेद हो गई ।”

“वाह रे छोटू । अघूरी बात क्यों करता है ? लोगों के सिर पर हाथ भी तो फेरते रहते हो ?”

“उससे क्या हुआ, मेरी सरकार ? कई सिरफिरे आते हैं । उनका सिर सहलाते जाओ, उनके मन बहलाओ और अन्त में वे कहते हैं कि मैंने बगली बार । जब मैं भुंभलाहट में आकर ज्यादा जोर देकर कहता हूँ तो कहने लगते हैं कि तुमने कौनसी बाजरी तोली है ? बाल ही तो काटे हैं ?”

“एक दिन एक बाबू साहब बोले कि गांधीजी ने कहा है कि नाई और वकील का पेशा एक जैसा हो हेय है क्योंकि दोनों ही समाज को कुछ देते नहीं, दोनों ही समाज को कतरते हैं । अगर ये दोनों हट जाएं समाज से तो इसमें समाज का भला है । शायद वह गांधीजी के वाद न जाने किसको घसीटकर लाता, मुझसे रहा न गया और मैंने कहा—गांधीजी ने तो बहुत सारी बातें कही हैं, पर उनकी बातें तुम्हारे भेजे में घुस नहीं सकती हैं । तुम्हारी खोपड़ी तो मेरी देखी हुई है । गांधी

जी की बात समझ में नहीं आई उन लोगों की समझ में भी, जो उनके नाम की कमाई खा रहे हैं।”

वह मेरी बात सुनकर दंग रह गया। वह बोला

“मैं तुम्हें किताने दिखाने में सक्षम हूँ, मिस्टर। तुम बाल काटने का काम किए जाओ, यह भ्रम की बात समझ में नहीं आ सकती।”

“तुम्हारा जैसा ही होगा तुम्हारी किताने वाला। गांधी की समझना आसान नहीं। गांधी की समझते नहीं वे लोग भी जो गांधीजी को बेचते हैं, गांधीवाद के धोक व्यापारी बनते हैं और धोक भाव से गांधी जी को बेचते हैं।”

“मेरे से 'बेट' कर लो,” वह बोला।

“काहे की। गांधीजी ने तो यह कहा कि नाई को चाहिए कि भेड़ बकरियों की ऊन बतारने के बजाय तुम जैसे आदिमियों के बाल काटे। गांधीजी ने धामद सोचा होगा कि भेड़-बकरी की ऊन काटना ज्यादा अच्छा है क्योंकि इन जानवरों की ऊन एक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करती है जबकि आदिमियों के बालों से कोई मतलब सिद्ध नहीं होता। तुम्हारे बाल एक बोझ हैं, जैसे ही तुम्हारे बहम। खोपड़ी हल्की रखो।”

“छोटू, नाई की कैंची चलती रहनी चाहिए, पर जब उसकी जीभ चलने लगती है तो समझ लेना चाहिए कि उसकी दुकान में कुछ नहीं है।” मैंने कहा।

“पर आपको यह किसने कहा कि नाई की दुकान में बेचने लायक कोई चीज होती है इसलिए ही तो नाई की दुकान को 'सँलून' कहते हैं।”

“हम लोग तो लोगों के बाल उतारते हैं, सर के भी और दाड़ी-मूँछ के भी। भजे की बात यह है कि उनके ही बाल उनके ही पैरों में। बालों में भगर इस्त्रत है तो इस्त्रत पैरों में।” छोटू का जवाब था।

“छोटू, तू तो नेता होने लायक है। जीभ तेरी कैंची की तरह चलती है। अच्छा तो यह रहेगा कि तू चुनाव लड़—एक नारे के साथ 'दुनिया-भर के नाइपो एक हो'।”

मेरी बात पर छोटू को हसी आ गई।

“भरे, हंसते क्या हो! मान लो कि दुनिया-भर के बारबर लोग एक हो जाएं तो वे अन्य लोगों पर प्रेशर ला सकते हैं। जो तुम्हारे साथ नहीं, तुम उसकी हजामत बनाना बंद कर दो। सारे ब्यूटी सँलून तुम्हारे वर्ग के हाथ में हैं। वे स

प्रकाशन की शारी कलाएं तुम्हारे हाथ में हैं। आज के एक्टर और एक्ट्रेस तुम्हारे हाथ के बनाये हुए हैं। वे मारी मोहू गल्ल किसकी देन हैं? बालों का संवारना, जुल्फों में मैगनेट भरना किसको आता है? तुम्हें स्वयं अपने स्वरूप और शक्ति का हनुमानजी महाराज की तरह ज्ञान नहीं। देग, तुम्हारे यहाँ ये दो चित्र दो स्थितियां प्रगट करते हैं।

“ एक हजामत के पहने की।

और दूसरी हजामत के बाद की।

“ एक ही आदमी के दो रूप। एक ही चीज के दो पहलू। मगर स्थितियों में अन्तर। हजामत के पहले वाले चित्र में आदमी वनमानुष लगता है। एक मवाली लगता है।

“ ‘हजामत के बाद’ वाले चित्र में रोमांटिक लगता है। एक पर्सनैलिटी निखर आती है। पर्सनैलिटी में ही प्लस पोयण्ट होते हैं।

“ पर आज पर्सनैलिटी दरमसल एक बारबर की ही देन है। परमात्मा ने आदमी के बनाने में जो लामियां रख दी थीं, उनको सुचारने वाले दो ही व्यक्ति होते हैं, एक नाई और एक दर्जी।

आज का व्यक्ति बारबरमेड है, टेलरमेड है। क्यों? क्या गलत कहता हूँ?”
मैंने छोटू के यहाँ एक कार्नर मीटिंग कर ली।

“बाहू गुरु! खूब लाए नये चांद की।” छोटू ने चुटकी लेनी चाही। “लो तुम तो मजाक समझ रहे हो?” छोटू की प्रतिक्रिया जानने के लिए मैं रुका नहीं और कहता ही चला गया, “बाबा, शेरसादी और मिर्जा गालिव से बड़ा तो आलिम फाजिल कोई हुआ ही नहीं। इन दोनों के साथ वह चोट हुई कि तेरे-मेरे जैसे आदमी तो ऐसी हालत में आत्महत्या कर लें। इन दोनों महानुभावों को बादशाह ने दावत पर बुलाया। उन्होंने अपने इल्म के नशे में किसी चीज का ख्याल नहीं रक्खा। न दाड़ी बनवाई, न कपड़े ही बनवाये और चल दिये मवाली की तरह। सन्तरी ने रोक लिया। अब तुम ही बताओ, कहीं माथे पर लिखा था कि आप हैं हिन्दुस्तान के आला शायर मिर्जा गालिव। नतीजा यह हुआ कि आप वेआवरू होकर आ गए। इसी प्रकार की फजीहत हुई ईश्वरचन्द विद्यासागर की। एक जगह कुलियों में पकड़े गये।

“ यह तो बारबर के हाथ का ही कला-कौशल सम्भना चाहिए कि आला

इडियट लोग बसोका होटल में घसे जाते हैं। बेरे लोग बारबरमेड घस्सियत के पीछे-पीछे चलते हैं। बारबर के हाथ में होता है पास भी पासपोर्ट भी, जिसकी बजह से बड़ी-बड़ी दिनर पार्टियों में ऐसे लोग पहुंच जाते हैं। इनके वालों के नीचे कुछ नहीं होता। सो प्यारे, मेरा कहना मान, जगा दे नारा—दुनिया-भर के नाइयो, एक हो जाओ।

मैंने छोटू के मुह की तरफ देखा, एक सास भाव-भंगिमा के साथ, जिसका मतलब था कि तुम क्या कहते हो।

“गुरु, तुम्हारी बात तो जची और मेरे दिमाग में एक और जच गई।”

“बह क्या ?” मैं पूछ बैठा।

“कि तुम्हारे पास पैगाम है दुनियाको देने के लिए। तुम्हारी वाणी में मोहिनी है जिससे तुम धादमी तो क्या, भट्टे को भी पिघला सकते हो।” छोटू ने बात पूरी कर दी।

“बाह छोटू ! हमारी बिल्ली हमसे ही म्याऊं।” मैंने सिर हिलाते हुए बात बड़ी।

“नहीं गुरु ! सब कह रहा है, खुदा की कसम !”

“ऊं !” मैंने भाग्य कुछ नहीं कहा।

“गुरु, तुम्हारे में तो पैगम्बर होने के लक्षण हैं। पैगम्बर लोग और क्या करते होंगे, बस यही तो तुम्हारी तरह चुटकलेबाजी, कहानी-किस्से बगैरह के जरिये लोगों को साथ कर लेते होंगे।” छोटू जरा गंभीर हो गया।

“बात तो ठीक ही कहता है, बड़े-बड़े पैगम्बरों की बातें पढ़ता हूँ तो मैं भी यही सोचता हूँ कि इन पैगम्बरों ने अपने पास के लोगों के चुटकल, कहानी-किस्से सुनाये। कोई भी कहानी-किस्से सुनानेवाला पैगम्बर बन सकता है। क्यों ? नुभे लगता कि छोटू (मजाक में ही सही) बात तो गहरी कह रहा है।” मैं भी कुछ सीरिअस हो जाता हूँ।

“बस एक दिक्कत जरूर आती है, पैगम्बर बनने में ?” छोटू इस धार काफ़ी गंभीर नज़र धाता है।

“यह क्या ?” मैं उत्सुक हो गया।

“हर पैगम्बर मरता है बेभौत। यीसू के कौलें ठीकी गईं। महाशमा गान्धी को गोली मार दी गई। मीरा को जहर पिलाया गया”...छोटू ने बात पूरी

भी नहीं की थी कि मैंने कुछ नाम ग़ौर जोड़ दिये।

“गुकरात की भी यही हालत हुई। मोहम्मद साहब को हिच करना पड़ा।”

“मरने के बाद तो उनकी पूजा जरूर होती है।” छोटू बोला।

“मरने के बाद कितने देना है। मरने की शर्त मंजूर नहीं, बाबा। हम तो जीवित रहने के लिए भूठी गंगाजली उठा सकते हैं, छोट-से प्रमोशन के लिए घफसर की चमनागिरी कर सकते हैं, कूड़ा हल्फ उठा सकते हैं, बस मरने की बात मंजूर नहीं ! दूर रखो पैगम्बरी।” मैंने अपना मेन्गुफेस्टो पेश कर दिया।

“तो फिर गुरु...” छोटू कुछ कहना चाहता था कि मैं बीच में बोल पड़ा।

अपने राम पैगम्बरी को घन्चे के तौर पर तो अपना सकते हैं। घन्चा कोई बुरा नहीं होता परन्तु मरने को तैयार नहीं। न किसी बात के लिए, न किसी सिद्धान्त के लिए। मुझे तो चाणक्य की बात जंचती है ‘आत्मनं सततं रक्षेत् दारैरपि।’

“मतलब क्या हुआ गुरु ?” छोटू ने पूछा।

“मतलब यह हुआ कि भरोसा किसीपर मत करो। अपनी रक्षा करो अपनी श्रीरत से भी। खैर, इन सबसे भी जरूरी है कि तू मेरी दाढ़ी बना।” मैंने सारी प्राथमिकताएं बदल दीं।

“फिर गुरु, संसार भरके नाइयो...”

छोटू की बात मैंने पूरी ही नहीं होने दी। मैं बोल पड़ा, “मार गोली इन सबको। उल्टा-सीधा उस्तरा चला, प्यारे।”

“इतनी जल्दी, गुरु ?” छोटू कुछ कहना चाहता होगा कि मैंने फिर उसे रोक दिया।

“मुझे साहब ने बुलाया है।” उनके बंगले जाना है।

ज्यों ही दाढ़ी पूरी हुई, मैं उठा, जब मैं हाथ डाला, जब मैं कुछ नहीं निकला, तो ‘सोरी छोटू’ कहकर दूकान से निकल पड़ा।

साइकिल ली, चल पड़ा। छोटू की क्या प्रतिक्रिया हुई होगी, जानने की न तो कोशिश की और न मेरे पास इतना वक्त ही था।

जब ब्रह्मा बागी हो गये

जब धरती बन गई तो त्रिमूर्ति ने तै किया कि धरती के उदनिवेशन का प्रारूप बने। कुछ देवताओं को स्वर्ग में पृथ्वी पर निपट किया जाए या वहीं पर नई सृष्टि की रचना की जाए, यह सारा कार्य प्रजापति के जिम्मे छोटा जाए। वैसे भी सृष्टि-रचना का पोर्टफोलियो सदा से प्रजापति के पास ही चला आया है। प्रजापति ने देवताओं के मुख्य अभियन्ता विश्वकर्मा को अपने साथ लिया। प्रजापति ने धरती की मिट्टी अपने हाथ में ली।

“मिट्टी तो अच्छी मालूम देती है, विश्वकर्मा, देखो तो नहीं।” प्रजापति बोले।

“मैं क्या देखू जब आप देख रहे हैं, पितामह,” विश्वकर्मा हाथ जोड़कर राडा हो गया।

प्रजापति ने मिट्टी के लोदे को अपने हाथ में दबाया और ऊपर-नीचे किया और एक खिलौना बना दिया।

‘यह मिट्टी तो ठीक है, इसमें गंध है, बेप भी है। खिलौने बनाने लायक है।’ प्रजापति ने मन ही मन कुछ कहा।

विश्वकर्मा देखता रहा।

प्रजापति का मूड धा गया। मिट्टी से तरह-तरह के खिलौने बनाने लग गए।

खिलौने देते-करते प्रजापति बड़े खुश हुए। उन्हें दिली मुसी हुई।

“क्यों! ये खिलौने कैसे सगे, विश्वकर्मा?” प्रजापति बोले।

“इसमें पूछने की क्या बात है महाशय। आप ही खिलौने बना रहे हैं तो फिर क्यों क्या ही सवती है, आपसे बड़ा ‘आर्किटेक्ट’ बन ही सरता है भन्ना!”

प्रजापति अपने मूड में खिलौने बनाने गए। धरती की मिट्टी को दिग्गन्ध

पावले देते गए। किसीके दो टांगें, किसीके चार टांगें, किसीके पूंछ लगा दी तो किसीके सींग। किसीके बड़े-बड़े कान तो उसके साथ छोटी-छोटी भांगें। कोई बिना बांग का। विश्वकर्मा को हंसी भी प्राये और आश्चर्य भी, पर विघाता को तुलिका गीन पकड़े।

प्रजापति दिन-भर गिनोने बनाते रहे।

बूढ़े प्रजापति को कुछ धकान महसूस होने लगी।

“अब बोलो विश्वकर्मा, गिनोने तो बहुत हो गए। अब और नहीं बनायेंगे। यह घरती इन गिनोनों से गूब सजेगी। कितने प्यारे-प्यारे। घरती की मिट्टी, घरती के गिनोने टूटेंगे तो घरती का माल घरती पर। अपने तो निमित्त माय हैं।” बूढ़े प्रजापति अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगे।

“महाराज, एक काम और करो। आखिर आपने इतनी मेहनत की है,” विश्वकर्मा बोला।

“वह क्या रह गया ?” ब्रह्मा बोले।

“इनकी चाबी तो भरो ताकि ये नाचें, गायें और बोलें भी। प्रजापति के बनाए हुए खिलोने तो तब ही जचेंगे। दीड़ते हुए, कूदते हुए।” विश्वकर्मा ने सुझाव दिया। ब्रह्मा हंसे। चारों मुंहों से। हंसी चारों दिशाओं में फैल गई।

“तुम्हारा प्रस्ताव तो ठीक है। इस वीरान घरती पर बहार आ जाएगी, पर खिलोने कहीं घरती पर खलवली न मचा दें। विष्णु कहीं उलहना न दें कि बूढ़े ब्रह्मा ने घरती पर पंगा खड़ा कर दिया,” प्रजापति विचारों में डूब गये।

“विष्णु महाराज तो बड़े ही खुश होंगे। उन्हें तो खुद ही खिलोनों का बड़ा शौक है।” विश्वकर्मा ने कमेंट किया।

“अरे, तुम क्या समझो विश्वकर्मा, केवल हथौड़ी ठोकते रहे हो। उसे तो एक ही खिलोना पसंद आ गया था, लक्ष्मी। शायद सोचा होगा कि गुड़िया है, खूब खेलेंगे। परन्तु उसे क्या पता था कि गुड़िया गजब ढा देगी और विष्णु खुद खिलोना बन जाएगा और उसके इशारे पर नाचेगा। अब तो जो खुद खिलोना बना हुआ है वह क्या खिलोनों से खेलेगा !”

“तीन बड़ों की बात है, मैं क्या जानूँ। परन्तु इन खिलोनों में चाबी भर दो। मेरी तो यही हाथ जोड़कर प्रार्थना है।” विश्वकर्मा बोले।

“तथास्तु। सब में चाबी भर जाये,” प्रजापति ने स्फूर्णा की। बस, फिर क्या

या ? ब्रह्मा की इच्छा पूरी हुई ।

“अब देखो इन तिसीनों को, सब के सब गतिशील व गतिमान । कौसा लगता है यह सारा नजारा, उरा अपने कमेट्स दो । तुम्हें अपने कमेट्स खुलकर देने है । तुम महान कारीगर हो, सारे देवताओं को तुम्हारे पर नाज है । हां तो बोलो, कोई एडीशन, घाल्टरेडान की बात है तो अभी किये देता हूं, तुम जानते हो मुझे नौद भा रह्यो है और तुम जानते हो मेरी रात का मतलब होता है चार युग—सतयुग से वनिगुग तक एक ही स्ट्रैंच में ।” ब्रह्मा ने विश्वकर्मा के मुलातिय होकर बात कही ।

“बड़ों की बात बड़ी होती है,” विश्वकर्मा ने बात पर सम्पुट बैठाने की कोशिश की ।

“विष्णु ने सारे देवताओं को चापलूस बना दिया, अब उन्हें स्तुति और स्तोत्र बहने के सिवा कुछ नहीं आता, परन्तु तुम तो कर्मी हो, विश्वकर्मा । देवताओं के कारीगर । तुम भी चापलूस । तुम्हें चापलूसी फवती नहीं,” ब्रह्मा ने विश्वकर्मा की ओर देखा, गुस्से से ब्रह्मा की दाढ़ी हिल रही थी । विश्वकर्मा कुछ सहमे और जल्दी ही अपने को सभल लिया और फिर बात का छोडा हुवा घागा पकड़ लिया ।

“ हां तो महाराज, आप खिलोनों के बारे में पूछ रहे थे । इन बारे में, पिता-मह, मेरे मुन्नाव व कुछ शंकाए हैं ।

“ आपने ये खिलौने बनाये । पांच टाग वाला यह खिलौना... ”

ब्रह्मा को हसी आ गई और बीच में ही बोल उठे, “पांच टाग वाला खिलौना नहीं, यह तो गूड है । यह हाथी है । टागें तो चार ही । सूड तो मेरा ‘आफ्टर पोर्ट’ है । मैंने इसे भीमकाय बनाया । बड़ा ही शक्तिशाली । शक्ति का मापदण्ड । कोई बल मापेगा तो बहेगा, सौ हाथियों का बल, हजार हाथियों का बल । पर मैंने इसकी गर्दन बनाई छोटी-सी । मुझे ख्याल आया कि यह तो बेचारा बैठ ही नहीं सकेगा । अगर कहीं गिर गया तो फिर खड़ा नहीं हो सकेगा । लीवर कहा मे आएगा । मुझे बड़ी हंसी आई अपनी बुद्धि पर तथा थोड़ी समिन्दगी भी महसूस हुई, यह सोचकर कि देवता लोग हंमंगे, विष्णु की आदत तुम जानते हो । उसको तो कोई बहाना चाहिए । वह तो भट से कह उठेगा कि ‘बुड्डे की मत मारी गई ।’ देखो यह खिलौना, इसमें ‘सेंस ऑफ प्रोपोर्शन’ ही नहीं । सारे चापलूस

देवताओं की जमात भी गिनगिनाकर हमने लगेगी। इन देवताओं की बातों से मनलन नहीं। विष्णु हूँगा, गहू हूँगे। इन देवताओं का देवत्व में गूब जानता हूँ। नारे के सारे पिट्टू और पिट्टनगू। जन माने में गहू लोग विष्णु के 'वसमैन' हूँ। नारे के सारे चुननगौर। इनका न स्वतंत्र अस्तित्व है और न सत्ता में साभेदारी। विष्णु निरंकुश है। ये देवगि के बच्चे बनते है, परन्तु इनको जरा-सा कुरेदो तो नाफ नजर आने लगेगा कि ये सारे के सारे चुगल, स्वार्थी और दोषे। यह स्वर्ग नरक से भी बक्षर बना दिया है।" कहते-कहते ब्रह्मा के चारों मुग के नयुने फून गए।

विश्वकर्मा को पहली बार महगूस हुआ कि इन तथाकथित तीन बड़ों में भी मनमुटाव है और ये भी एक-दूसरे से रस्क करते हैं। केवल बाहर से एक दिखाई देने वाली त्रिमूर्ति अन्दर से गीनली है। एकता का तो केवल 'फसाठ' है, दिखावा है। हकीकत तो यह है कि सत्ता को साभे में कोई नहीं भोगना चाहता, देव ही या अदेव। परन्तु बड़ों की लड़ाई में नहीं फंसना है, इसमें सतरा है। इस ख्याल मात्र से विश्वकर्मा को पसीना आ गया। वात का रूप बदलने के तिहाज से विश्वकर्मा बोले—

"तो पितामह, आपने मूंड लगाकर हायी को 'लीवर' दे दिया। वह अब बैठ सकता है और खड़ा हो सकता है। आपने मूंड चेषकर विघाता के पद की गरिमा ही बढ़ाई है। अब कोई नहीं जान सकेगा कि विघाता ने कभी कोई चूक की थी।" विश्वकर्मा ने वात को नया मोड़ दिया।

"जब मैंने ऊंट बनाया तो इस वात को मड़े-नजर रखा," ब्रह्मा के ओठों पर मुस्कराहट दिखाई दी।

"ऊंट वाला खिलौना तो मास्टरपीस है, पितामह," विश्वकर्मा ने चलते में वात चेष दी।

ब्रह्मा खुश नजर आ रहे थे।

"महाराज, इजाजत दें तो मैं अपनी एक शंका को स्वर दे दूँ," विश्वकर्मा ढरते-ढरते बोला।

"बोलो, क्यों नहीं," ब्रह्मा की दाढ़ी ऊपर-नीचे हिली।

"महाराज। आपने दो टांग वाला खिलौना जो बनाया है..."

"हां हां, आदमी," ब्रह्मा बोले।

"आदमी को दो टांगों दी और वे भी पतली-पतली। हाथ विल्कुल खाली। इस डिजाइन के पीछे आपका मकसद क्या था ? इसकी पतली चमड़ी में सर्दी और गर्मी सहन करने की क्षमता नहीं। यह बेवारा हाथी, घोड़ा, सिंह, ऊट, मगर-मच्छ जैसे खिलौने के बीच कैसे रहेगा ? यह खिलौना तो जल्दी ही टूट जाएगा, मिट्टी में मिन जाएगा। कहीं हाथी वाली बात तो नहीं है। यदि आप उचित मामलों तो डिजाइन में तब्दीली कर ली जाए, मेरी सेवाएँ आपके चरणों में हाजिर हैं।"

"तुम भी आ गए ट्रेंप में, देवताओं का सर्वोच्च अभियन्ता भी चक्कर में। खूब, खूब।"

प्रजापति खूब ही चिंतनविलाकर हूँ। उनका नाभि-कमल भी बुरी तरह हिलने लगा मानो कोई भूकम्प आ गया हो। विश्वकर्मा दग। पूरी बात समझ नहीं सके। घबरा गए।

"पितामह, मैं आपके सामने तो एक भ्रष्टाचारी और अदना-सा व्यक्ति हूँ, परन्तु मैंने क्या कोई गलत बात कही थी, जान-भनजान में कोई गलती हो गई हो तो मैं क्षमा-याचना करता हूँ, परन्तु मूलतः मैं बात समझा नहीं," विश्वकर्मा ने अनुनय-विनय के स्वर में बात कही।

"देखो विश्वकर्मा, यह खिलौना दो टांग वाला और दो हाथ वाला, देगने में बहुत ही कमजोर और टूटने वाला लगता है। तुम्हें मालूम रहे, मैंने सबसे बाद में बनाया है और खूब सोच-समझकर। जब मैं इसका रचना-कार्य कर रहा था तो बड़ा ही बेचैन और क्षुब्ध था। मैं तुम्हें एक राज की बात बताएँ देता हूँ। तुम जानते हो कि यह त्रिमूर्ति की संस्था बितना बड़ा टकोसला है और इसके पीछे कितनी बड़ी साजिश है। मूल योजना तो यह थी कि एक सामूहिक जिम्मे-दारी, एक 'कलेक्टिव लीडरशिप' हो, परन्तु विष्णु ने किस प्रकार अपने-आपको सर्वोच्च साबित करने के लिए क्या नहीं किया ? तब तो सबकुछ में भीला है। उसे तो 'एग्जिटिव पावर पोलिटिकम' से धलन कर दिया। भाँसे में लाकर उसके कपड़े तक उतरवा लिए। थापवर पहिना दी। सच पूछो तो पारीफ और भीने व्यक्ति का जमाना नहीं है। मूलरूप से यह समझो कि शिव के महम् को या उस भीने स्वभाव को इक्ष्वाकुपुत्र निया गया। केवल चटपटी भाषा में कहा गया कि शिव योगीराज है, कामजीव है। शिव फूलकर हुप्पे हो गए। सत्री बेचारी

बोले क्या ?

“ शिव जैसे भीने रामाय के महादेव (केवल शक्तों में) विष्णु की चाल को क्या समझें ?

“ मुझे बुरा साबित करके एकदम देवताओं से घलग-घलग कर दिया। लगातार चरित्रहसन की प्रक्रिया चलती रही और वह भी इन तरह कि देवताओं में मेरा कोई अनुयायी नहीं रहने दिया। मेरी नहीं मूर्ति लगने नहीं दी। मेरा घर फांटकर रग दिया, अज्ञानी मुझसे कुछ अलग जा बैठी। नरोजा यह हुआ कि त्रिमूर्ति तो नाम मात्र की रह गई।

“ समुद्र-मंथन के लिए देव और दैत्यों को उकसाया गया। जब कालकूट निकाला तो आप किनारा कर गये और मूनी चढ़ने के लिए कौन ? बेचारे शिव। मुझे याद है, शिव को किस तरह फुसलाया गया और जहर पीने के लिए उन्हें रजामंद किया गया। फुसलाकर। आगिर वह जहर उनको पिला दिया गया। बेचारे शिव के कंठ नीले पड़ गये और वे रादा के लिए नीलकंठ बन गये।

“ परन्तु जब चौदह रत्न निकले तो आप सबसे आगे। लक्ष्मी को देखा तो बोले—यह तो मैं लूंगा। उर के मारे कोई देवता नहीं बोला और दैत्यों को आँवें दिखा दीं। मुझे तो हैरत होती है इन देवों के व्यवहार पर। उन्हें 'देव' कहना देवत्व का अपमान है। परन्तु जिन्होंने भुक्त-भुक्तकर स्तोत्र-स्तुतियां पढ़-पढ़कर देवत्व प्राप्त किया हो, वे न्याय के लिए लड़ नहीं सकते। उनमें न आत्मबल, और न आत्मा की आवाज जैसी कोई चीज।

“ अगर ज़रा-सी भी आत्मतेज व न्याय के लिए लड़ने की हिम्मत होती तो वे फौरन वगावत का भण्डा खड़ा कर देते और एलान कर देते कि जिन्होंने समुद्र-मंथन किया है वे इसके हकदार हैं।

“ परन्तु कौन बोले ! विष्णु लक्ष्मी को लेकर अलग हो गये और बड़ी बेशर्मी से घोषित कर दिया कि लक्ष्मी मेरी पत्नी है।

“ चलो, यहीं तक ही बात ठहर जाती तो भी हम आई-गई कर देते, परन्तु अब आप लक्ष्मी के चक्कर में इस तरह फंस गये कि त्रिमूर्ति की संस्था तक बदनाम है, लक्ष्मी समुद्र की बेटी और वह अपना पीहर नहीं छोड़ना चाहती तो आप भी ससुराल चले गये। समुद्र में एक 'विला' बना लिया और वहीं रहने लगे और कुछ नागों को साथ ले लिया, शेषनाग उनका रिग लीडर। इन नागों के

साथे मे अपने समुद्री विला मे पडे रहते हैं और आजकल लक्ष्मीरमणा कहलाने मे अपनी दान समझते हैं। इन देवो को देखो, स्तुति मे सशोषन कर लिया 'जय लक्ष्मी रमणा।' क्या बात हुई। पर इनकी बुद्धि का दिवाला निकल गया। ये हमारे देव !

“लक्ष्मी के सम्पर्क मे जाने के बाद तो विष्णु के तो हालचाल ही बदल गये। इस स्वर्ग का क्या हान होगा ? स्वर्ग की स्थिति बिगड़ती ही जा रही है, स्वर्ग मे कौन घाना चाहेगा और ऐसे स्वर्ग मे आकर कोई करेगा ही क्या ? स्वर्ग की पहली घात है कि वहा सुवासन हो। परन्तु जहा की सत्ता ही अपने-आपमे विच्छिन्न और धराजकतापूर्ण हो, वहा कौसा स्वर्ग ! यहा का राज्यपाल इन्द्र अपने-आपमे करपट है। हर देवता के मुह पर नाम है तो किसी रम्भा या मेनका का है। देवो मे चूगली और चापलूसी बढ रही है। पर विष्णु को तो अपने समुद्री महल से निकलने की कुरमत् ही नही। ये सब लोग 'रमणा' सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गए हैं। अब नये सम्बोधन चलेंगे, रम्भा रमणा, कोई मेनका रमणा। जब बुद्धि पर पर्दा पड़ता है तो पठता ही जाता है।

“मुझे जित प्रकार भयमानित किया गया, मैं इस भयमान के घूट पीकर रह रहा हू, वह मेरा ही जी जानता है। यह जलानत-भरी जिन्दगी, मेरा खून गोल उठता है। परन्तु मैं यह अच्छी तरह जानता हू कि ये देवगण तो पूर्णतया नपुमक है। ये तो हर प्रकार के अपमान व अन्याय को सहन कर सक्ते हैं। मैं सीनिमो-रिटो मे विष्णु से किस बात मे कम हूँ !

“मैं जब वह खिलौना बना रहा था, तब मैं इस प्रकार की मानसिक उपेक्ष-बुन मे लगा हुआ था। कहने को मैं पिलामह, पर मेरा कोई टोर या टिकाना नही रहने दिया। मैं स्थानभंग व मानभंग की स्थिति मे ही जीऊँ, मेरे लिए बिकल्प नही छोड़ा। प्रतिपोष की इस भावभूमि मे, प्रतिहिंसा, घृणा और गंथान की इस पुच्छभूमि मे मैंने यह गिलौना बनाया।

“मेरा यह खिलौना भादमी कहलायेगा। पतली टांगो से चायुवेग से दौड सकेगा, हमके वेग के सामने गहड भंग मारेगा। मैंने सारी चीजें हमके दिमाग में भर दी हैं। हमके दिमाग के कोने मे मुराफात का एक मझाना बना दिया है, वह सुराफात पड़ता रहेगा।

“बह इन कमजोर हाथो से पहाड़ उडा सकेगा। सार्वो हाथियो का बल हममे

होगा। वह हवा में उड़ सकेगा, समुद्र में तैर सकेगा। आग में जलेंगा नहीं। वह हवा पर सवार होगा, पौधे पर सवार होगा। वह बिना पैरों भागेगा। पानी बिजली उसके बंध में होंगे।

“ मेरा यह गानक का पुतला गलक में गलबली मना देगा। मैंने अपने सारे द्वेष, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या बगैरह की आग उसके दिमाग में रग दी है। ये हैं मेरे जीन्म। मेरा यह पुतला विष्णु को ललकारेगा, उनका बहुम निकाल देगा, डिफाई करेगा। इन देवताओं का मानभंग करेगा, नश्वी उनकी चेरी बन जाएगी और विष्णु टापता रहेगा।

“ यह गानक का पुतला चुनौती देगा। विष्णु के अगर छवके न छुड़ा दे तो मुझे विघाता न कहना। उसको लने के देने पड़ जाएंगे। यह आग उगलेगा।

“ मैंने अपनी सारी प्रतिहिंसा उसके दिमाग में रग दी। मैंने अपना सारा रोप उसके दिमाग में रग दिया है। यह है मेरी विरासत।

“ रोप और प्रतिशोध की मनःस्थिति में बनाई हुई प्रजा से अन्य तरह की अपेक्षा ही नहीं की जा सकती।

“ परन्तु मुझे एक भय जरूर है, ” कहते-कहते ब्रह्मा गंभीर हो गया।

“वह क्या है ?” विश्वकर्मा ने मौन भंग किया।

“ घृणा, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध, रोप का ओवरडोज अन्य प्रकार से भी रिपैक्ट कर सकते हैं।

“खाक के पुतले आपस में भी लड़ सकते हैं, अगर उन्हें लड़ने का अन्य वहांना न मिले तो। ”

“महाराज बात को कुछ और स्पष्ट करो।” विश्वकर्मा ने उत्सुकता दिखाई।

“अब तो मेरी रात होने जा रही है, मुझे नींद आ रही है इसलिए इतना समय नहीं कि मैं तुम्हें पूरी बात समझा सकूँ। मेरी आंखों में नींद धुल रही है। परन्तु भयंकर आक्रोश, संत्रास की मनःस्थिति में बनाए गए इस मनुष्य नामवारी पुतले के दिमाग में मैंने अपने मनोभाव पूर्णतया आरोपित कर दिए, सम्पूर्ण तीव्रता व तिक्तता के साथ।”

“महाराज, यह तो गजब हो गया, पुतले आपस में लड़ेंगे।” विश्वकर्मा बोला।

“कुछ भी समझो, मेरे दिमाग में अब कुछ नहीं है, मुझे नींद आ रही है।”

“कुछ मुफार करो।”

“ज ग ने प र दे खें गे।”

“इस वीथ तो चार युग बीत जाएंगे।” ब्रह्मा खरटि भरने लग गया।

“कुकड़ू कू।”

“यह तो ब्रह्मा का खिलौना बोल रहा है, ब्रह्मा नहीं।”

ब्राह्ममुहूर्त हो गया, पर ब्रह्मा सो रहा है। ब्रह्मा की रात चल रही है, चनेगी। प्रलय-पर्यन्त। विश्वकर्मा उठा, चल दिया, विष्णु के महा पेशी जो है।

भूमियो जी का मंदिर

बग ठहरी। मुझे उतरना था। यहाँ मे गाँव कोई तीन कोस। मीलों में कोई छः कोस। मई-जून के महीने में छः कोस की यात्रा भी अपने-आपमें भयंकर कसरत है। हवा में दतनी गर्मी होती है कि ऐसे समय में यात्रा करने का मतलब होता है आग की लपटों के अन्दर से गुजरना। रेत दतनी गर्म हो जाती है कि आप रोटी सेंक लो।

मैं बस से उतरा उस समय कोई आठ बजे का टाइम होगा। तीन कोस की यात्रा के लिए कम से कम दो घण्टे तो चाहिए। बस से उतरते ही मुझे फिर इस बात की थी कि कोई ऊंट मिल जाए। रेत में जहाँ और कोई सवारी नहीं जा सकती, वहाँ ऊंट ही जा सकता है। गाड़ी घंस जाए। घोड़ा गड़बड़ा जाए।

दो-चार जगह से पूछने पर मालूम हुआ कि वैसे तो कोई जाने को तैयार नहीं होगा और हो भी गया तो ऊंट का भाड़ा लेगा 'हाड़ फोड़कर'। मैं इसके लिए तो तैयार था क्योंकि ओखली में सिर रख देने के बाद मूसल से नहीं डरना चाहिये, यह बात तो मैंने अनुभव से बहुत पहले सीख ली थी। परन्तु ऊंट तो मिले। अगर कुछ देर तक कोई ऊंट नहीं मिला तो सूरज सिर पर आ जाएगा। ऐसे वक्त में तो लोग मुर्दे को भी बाहर नहीं निकालते। बस, यही चिन्ता मेरे सर पर सवार थी।

मुझे एक ने बताया कि एक ऊंट लालासर का आया हुआ है और लालासर से मेरा गाँव कोई एक कोस ही रहता है। अगर वह आदमी तैयार हो जाए तो मेरा काम आसानी से बन सकता है। मैं बात कर ही रहा था कि मुझे वह आदमी सामने आता हुआ दिखाई पड़ा। मुझे बताया गया कि यह है वह आदमी। बात कर लो।

मैंने उससे रामरमी की और वाद 'रामरमी' वह बोला, "चलो।" भाड़े के

लिए उसने अपनी तरफ से कोई पेशकश नहीं की। वह मेरी पाच रुपये की भोफर पर तैयार हो गया।

उसने ऊंट को बैठने का संकेत दिया। ऊंट बैठ गया और उसकी थोड़ी-सी मदद से मैं ऊंट पर सवार हो गया। मेरे लिए ऊंट की सवारी का कोई नया अनुभव नहीं था, परन्तु काफी घर्से के बाद ऊंट पर सवार होने के कारण सवारी के अनुभव को नवीनीकरण करने की खुशी तो थी ही।

गांव से निकलते ही उसने ऊंट की एक डगर पर डाल दिया और साथ में चल रही थी एक पक्की सड़क, जिसपर पत्थर सर उठाए हुए पड़े थे, शायद रोजर फेरने की स्टेज ही नहीं भाई ही।

“तुम्हारा नाम क्या है ?” मैंने पूछा।

“कालू।”

“जाति ?” मेरा दूसरा सवाल था।

“मेघवाल।”

मैंने कालू के मुंह की तरफ गौर से देखा।

“क्यों, क्या देख रहे हो ? मेरे साथ चलने में कोई आपत्ति तो नहीं है ? अभी तो गांव से निकले ही हैं।” कालू बोला।

“आपत्ति काहे की ? मैं तुम्हारी बात समझा नहीं, कालू।” मैंने कालू के मुंह की तरफ फिर देखा।

“यही कि मेघवाल हूं, चमार हूं और आपकी मेरे साथ चलने में कोई दिक्कत हो, मन में खानि हो। मैंने आपसे कुछ नहीं छिपाया, न तो मन की बात और न अपनी जाति।” कालू ने अपना स्पष्टीकरण-सा पेश कर दिया।

“नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, मैं तो यह पूछ रहा था कि सड़क क्या बनी ?”

“क्या आप इसे सड़क कहेंगे ? यह पत्थर तो पिछले साल डाले गए। अकाल सहायता राहत-कार्य में यह सब कार्य हुआ। ये रेत भी डाली गई। कालू के महल की तरह यह कालू की सड़क बनाई गई। परन्तु इस सड़क बनाने में लोगों ने तबियत भरकर रेत खाई। बड़े-बड़े आदमियों ने तो तबियत भरकर रेत खाई। हम गांव वालों ने भी थोड़ी बहुत रेत खाई, पर गांव वालों तथा गरीब आदमियों को बड़े आदमी रेत खाने नहीं देते, उनका पेट बड़ा होता है। बड़े लोग ही भाटे

श्रीर पत्थर या जाते हैं घोर भय की बात यह है कि ये लोग भाटे-पत्थर-रेत सब हजम कर जाते हैं, डकार तक नहीं भेते। हम लोग देगते रहते हैं और हमसे कोई कोशिश करे तो राने नहीं देते। शरीर आदमी तो जैसे राने पैदा होता है, कभी-कभी घबके भी खाते हैं, परन्तु ये बड़े लोग भूत-पत्थर-कंकर खाते हैं। किस्मत में लिगाकर लाये हैं।" कानू ने एक लम्बी सांग गीगी।

मैंने फिर कानू की ओर देगा। उसकी आंखों में देगा। मुझे लगा कि कहीं गलत गहवाधी का साथ तो न कर लिया। मुझे जरा आशंका भी हुई श्रीर दिमाग के एक कोने में भय का संचार भी हुआ कि कहीं मेरा 'फैलो ट्रेक्टर' दिमाग व इरादों से तो बुरस्त है। निर्जन स्थान में एक अजनबी का साथ अपने नाथ में कुछ आशंका भी ला सकता है। परन्तु ज्यों ही मैंने उसकी आंखों में आंख डालकर देखा तो उनकी पुतलियों में एक चमक दिगार्ई पड़ी। कालू हंस पड़ा।

"तुम क्या कह रहे हो? मैं तुम्हारी बात समझ नहीं।" मैंने सवाल किया।

"समझ तो मैं भी नहीं सकता, बाबू साहब। मैं तो बात बता सकता हूँ और श्रीर बात यही है, इसमें फर्क नहीं।" कालू बोला।

"बता सकता है वह समझा भी सकता है।" मैंने जिरह शुरू कर दी।

"यह जरूरी नहीं।" बाबू साहब।

"यह कैसे?"

"यह ऐसे, आज गर्मी पड़ रही है, हम लोग कहते हैं 'लाय' पड़ रही है। मैं यह जानता हूँ। पर आप पूछो कि यह लाय क्यों पड़ रही है? तो मैं आपको समझा नहीं सकता। वस यही बात यहां लागू है। अगर आप समझना चाहते हैं तो आप जाइए बड़े दफ्तर में जहां पाई-पाई का हिसाब कागजों में लिखा है कि इतनी रेत पड़ी है, इतने पत्थर पड़े हैं। कागज पर रेत पड़ी है, तो जमीन पर क्यों नहीं पड़ी? आप बड़े अफसर को साथ लाइए और उसे कहिए कि अपने कागज साथ ले चलिए। फिर यहां लाकर उसे कहिए कि मिलान करो कागज की रेत का और जमीन की रेत का। कागज पर पड़ी है दो लाख क्यूबिक फुट रेत और जमीन पर है पचास हजार क्यूबिक फुट। यह डेढ़ लाख क्यूबिक फुट रेत कहां गई? जमीन पर तो है नहीं। कोई न कोई तो इस रेत को खा ही गया होगा। हो सकता है कि अकेला आदमी इतनी रेत नहीं खा सकता तो मिलकर खा गये

हीने। रेत तो साईं गई है। कुछ दूर तक ये परपर डाल दिये। जैसे दफनरी में कागजों पर कुछ रख देते हैं कि कागज उड़ न जाए। बस इसी तरह इस रेत पर ये भाटे रख दिये ताकि यह रेत उड़ न जाए।

“कागज में रेत नहीं उड़ती चाहे कितनी ही धांधिया घ्राए, तूफान घ्राए। धसबत्ता कागज उड़ सकता है। अगर कागज उड़ सकता है तो रेत भी उड़ सकती है, इसलिए कागज को बांधकर रखते हैं, तापेटकर रखते हैं। धब सारा घाम कागजी।

“कागज में नहर बहती है, पर कागज गलता नहीं, यह कागज बनाने वालों की तारीफ है। पर कागज में सड़क दोड़ती है। कागज में कुछ लाइनें लींची कि सड़क बन गई। यह काम रोजमर्रा करते हैं। कागज में सड़क बनाने में एक्स-पर्ट है। पर जब जमीन पर सड़क बनाने का काम पड़ता है तो उनको एक दिक्कत आती है, कागज में तो चार भादमी ब्यादा लगाए तो उनका काम निकालने के लिए एक मशीन है जो जोड़-बाकी लगा देती है। काम पूरा हो जाता है, भादमी चाहे बैठा रहे। परन्तु जमीन पर हिसाब गड़बड़ा जाता है। सड़क पर काम करने वाले मजदूर ताप खेलने लग जाते हैं, मीट चीपड़ खेलने लग जाते हैं, इजीनियर और ओवरसियर सितेमा या शीपिंग करने चले जाते हैं तो सड़क भी ठहर जाती है, भागे चलती नहीं। शाम को ओवरसियर आता है, 'लोगबुक' भर देता है। जमीन की सड़क चली कि नहीं, वह परवाह नहीं करता...”

कालू तो शायद रकने का नाम ही नहीं लेता, परन्तु जब ऊंट रुक गया तो उसको खयाल आया कि वह ऊंट पर सवार है। उमने टिच-टिच की, पर ऊंट हिला नहीं।

“क्या बात हुई ?” मैंने पूछा।

“चीड कर रहा है। आज तुबह से उसने 'चीड' ही की नहीं।” कालू ने जबाब दिया। मैंने उसकी तरफ देखा और वह शायद मेरी मन की बात समझ गया, बोला :

“पेशाब कर रहा है ऊंट।” बयो, ऊंट को बिठलाऊ, आपको भी कोई हाजत हो।” यह कहते हुए उसने भूट से बागडोर के कुछ अर्धपूर्ण भूटके लगाए और ऊंट बैठ गया। मैं उतरा और कालू भी।

मैं तो अपनी शंका का क्षीप्र ही निवारण करके आ गया। कालू ने कुछ सूँठे

तिनके झकड़ते गए रंगों में, मुझे गलाज कुल्लुहल हुआ और पूछ बैठा, "यह क्या हो रहा है कालू ?"

"देगो, नाई नाई साल तिनने कि सामने आ जाते दे। अभी सामने आ जाते हैं।" उसने तिनकों में आग लगाई। अपने पैर के अंगूठे और खंगुली के सहारे से धमाई हुई चिलम में अंगारे रंगे, चिलम के छोटा-सा कपड़ा लपेटा और जोर से दम नीचा और उमगा मुंह घुंघुं से भर गया।

"घ्राप बोड़ी-निगरेट नहीं पीते क्या, बाबू साहब।" उसने एक जानकारी चाही।

"नहीं।" मैंने जवाब दे दिया।

"तो, चलो बैठो ऊंट पर, मूरज सिर पर आ जायगा।"

"पर तुम्हारी चिलम तो पूरी हुई ही नहीं।"

"इसकी फिर मत करो, ऊंट पर ही पी लूंगा।"

हम दोनों ऊंट पर सवार। कालू ने दोनों टांगें एक तरफ कर लीं। वह अपनी चिलम का कश भी मींचता जाता और टिच-टिच भी करता जाता।

"क्यों कालू, क्या हम अब सड़क के साथ-साथ नहीं चलेंगे?" मैंने अपनी सूचना के लिए बात पूछ ली जैसे हम रेनवे इन्वयारी से पूछते हैं।

"यह सड़क चाहे साथ-साथ चले या अलग चले, कोई फर्क तो पड़ता नहीं। सड़क पर तो कोई चल नहीं सकता। आदमी पैदल चले तो अब्बल तो उसे हाथ में दूसरी जोड़ी जूतों की लेकर जलनी चाहिए।"

मुझे जरा हंसी आ गई।

"बाबू साहब। हंसते क्या हो, जरा आजमाकर देख लो। इसपर न कोई बैलगाड़ी चल सकती है, न कोई भैंसागाड़ी और न कोई ऊंटगाड़ी।" कालू के मुंह से बात भी निकली और चिलम का धुआं भी।

"पर कच्चे रास्ते से तो ठीक ही होनी चाहिए।" मैंने कहा।

कालू को मेरी बात पर हंसी आ गई या कोई चिलम के घुंघुं ने फेफड़ों में कोई 'इरीटेशन' पैदा किया हो। खुलखुलाते हुए बोला, "देखते हो अपना ऊंट। इस कच्चे रास्ते से तो हजारों ही वार चल सकता है, परन्तु इस सड़क पर इस ऊंट को डाल दो, इसके पैर छिल जाएंगे। ऊंट के साथ जोर या जबरदस्ती करो तो ऊंट टूट जाएगा। आज ऊंट के ढाई हजार रुपये लगते हैं, आज ऊंट

सरोदना तो हवाई जहाज सरोदनी है।" कालू ने बात सतम ही नहीं की थी कि मुझे हसी आ गई और मैंने पूछा।

"क्या तुम्हारे हिराब मे हवाई जहाज की कीमत ढाई हजार होती है?"

"देखो जी, यह तो बात की बात है। ढाई हजार नहीं तो पांच-दस ऊंट की कीमत लगती होगी, और क्या हाथी की कीमत लगती होगी?"

मुझे बड़े जोर की हंसी आ गई। कालू सहमा और उसे लगा कि उसने बहुत ही झटपटी बात कह दी। सफाई देने लगा।

"देखो बाबू साहब, गह्री कीमत तो उसको पता ही जिसने कोई चीज मूल्याई हो, पर गांव नहीं जावें तो 'गैला' क्यों पूछें? हमें हवाई जहाज से क्या लेता-देना? जब कभी हमारे गांव के ऊपर से भनभनाहट करता हुआ जाता है तो हम सब लोग ऊपर की ओर मुह फाड़कर देखने लगते हैं। भू-भा तो बड़ी जोर की होती है, परन्तु लगता तो ऐसा है जैसे कि कोई उड़नखटोलो। लोग कहते हैं कि इसमें गांव का गांव आ जाता है। मेरी तो समझ में नहीं आता कि ऐसे कैसे हो सकता है। फिर सोचता हूं कि मुझे तो इसमें बैठना नहीं, फिर अपनी बला से कैसे हो हो। अपना तो यह ऊट ही हवाई जहाज है। जब यह जोर से भागता है तो हवाई जहाज जैसे ही हीण्डे भातें हैं।"

"यह तो ठीक है, कालू! पर तू तो कह रहा था कि हवाई जहाज कोई हाथी घोडा ही है? क्या तूम सोचते हो कि हाथी हवाई जहाज से महंगा होता है?"

"इसमें क्या दो राय हैं, बाबू साहब? हाथी तो मरा हुआ भी नौ लाख का होता है, फिर जीते जी तो उसके मोल या कोई क्या अन्दाज लगा सकता है? आपका हवाई जहाज टूट जाए तो टूटा हो जाता है, एक टका नहीं बटता। लोग कहते हैं कि हवाई जहाज से कोई गिर जाता है तो एक फायदा जरूर होता है?..."

मैं उछला, "गिरने से क्या फायदा होता है?"

"मरने वाले की हड्डी हरिद्वार भेजने की जरूरत नहीं होती। हरिद्वार आने-आने का खर्चा तो बच ही जाता है, मरने वाले की तो मरना ही पड़ता है, मीत की पड़ी तो टलती ही नहीं। बियाता ने छटी के रोज जो सत्त लिख दिए वे तो लोहे की लगीरें हैं। टाले टग नहीं सकती। परन्तु हरिद्वार के आने-आने का खर्च भी भाज के महगाई में मार देता है। यह तो मैं भ्रूगतभोगी हूं। पिछले साल मैं सरनी मां के फून लेकर गया। बड़ी मुसीबतों के साथ पहुंचा, मां की गले में

निए हुए मड़े होंगे और वह उनसे गिड़गिड़ाकर कह रही थी जैसा कि उसने सारी बिन्दगी-भर बेवस गिड़गिड़ाने की भाषा सीखी थी, उससे कुछ मोहलत मागी होगी और ज्योंही मैंने हां कह दी, उसने हाथ फेला दिये। जम के दूतों ने उसे हथकाड़ा पहना दी होगी। मैं तो इसको इसी प्रकार लेता हू। जम के दूत तो हरेक को दिखाई नहीं देते, सिवाय मरने वाले को, लोग ऐसा कहते हैं। मैं झूठी गंगा-जली क्यों उठाऊँ ? पर अगर यह बात सच है तो मैं इतनी बात जरूर कह सकता हू कि जम के दूत हमारे सरकारी सिपाहियों से ज्यादा दयालु है। अगर इन दूतों के बजाय जमराज इन सरकारी सिपाहियों को यह काम समलवा देता तो ये लोग मेरी भाँ और मेरे बीच पूरी बात नहीं होने देते। इनमे न तोसत्र है, न सहानुभूति।

"मैंने बारह-छ. महीने इन्तजार नहीं किया। गिड़गिड़ाकर कर्ज को परत मोटी कर ली। भा को हरिद्वार पहुँचा धाया। गंगा मैया के दर्शन से मुझे एक बात का ज्ञान हुआ कि कोई मरकर हरिद्वार नहीं जाए। जाए तो जिन्दा ही जाए। गंगा मैया से बात कर ले। जहाँ चाहे और जब चाहे गंगा की गोद में चला जाए। ये पण्डे लोग रात की तो मट्टी पलीत करते हैं। सब पूछो तो अगर परमात्मा मुझे मिल जाए और कहे कि एक ही वर माग तो मैं तो यही कहूँ कि जोर से एक वर का प्रभावा कर जिससे एक बहुत बड़ा गड्ढा बन जाए कि उसमें सारे पण्डे, सामाजिक व राजनैतिक, पत्र, सरपत्र, ग्याय-पत्र, सारे सरकारी अफसर, नेता, एम. एल. ए, एम पी. वगैरह सब उसमें समा जाए, फिर वापस गड्ढा बूर दिया जाए। इन सबकी तो समाधि हो जाए। अगर ये राज और समाज दोनों ही सुधर जाएं।" कालू ने एक ठण्डी सास ली।

"नहीं तो ?"

"नहीं तो यह कुत्ते मार देंगे, राज को भी और समाज को भी। कुत्तों से भी आदमी 'पुचकार'-बुचकार से काम चला सकता है। परन्तु ये सारे के सारे 'हिड़के हुए कुत्ते। यह हिड़क इम हद तक फैल गई है कि जीने के लिए इनसे बचकर रहो, इनके रास्ते से घलग रहो।

"कुछ लोगों को अपने ऊपर बड़ा नाउ था। बोले कि इनकी हिड़क ठीक करने देंगे, हमने उन्हें समझाया कि इनकी हिड़क ठीक नहीं होगी। लुप खुद इनके साथ हिड़क जाओगे और दुःखा भी यही। ये भले-खगे लोग भी हिड़क गए।

"अब हम तो इनसे इतने डर गए हैं कि जब वे 'हाऊ-हाऊ' करते हैं तो हम

कुछ नहीं कहते बल्कि उनकी देख में देख निम्नता से और जब जरादा हाज-हाज होती है तब हम निम्नता से, आताऊ, आताऊ।”

मुझे इसी आ गई।

“तुम्हारे क्यों हो वास्तुही ? मरनी मत है। मरीच आदमी की क्या हिम्मत जो इन दिनोंके टूट, कुनों का मुआवजा करे। इग्निए हम तो ये जिनको कहते हैं वोट दे देता है, वोट गया देना है, अपना गिण्ट छुड़ाना है।”

कालू की बातों मुनकर मेरे दिमाग में एक प्रतिधिया यह हुई कि इस देन में बात का मोल नहीं है। जिन आदमी के मुह में बात निकलती है, उसका मोल तो भी वह बात बेवकीमती है। परन्तु यजनदार बात भी कमजोर आदमी के मुह से निकल जाए तो कौन उनको मुनेगा ? मजाक बनकर रह जाएगी।

कालू मेघवाल का दिमाग कितना फोटोगेफिक है ! उसके दिमाग कैसा के सामने जो भी चीज आती है, उसके दिमाग के कौनवान पर चित्र बन जाता है। स्पष्ट और अमिट। पर किसने यह जानने की कोशिश की कि कालू मेघवाल उसके जजवालों के तूफानों के वेग की गति जानने की कोशिश की ? मुझे कालू मेघवाल एक प्रतीक प्रतीक हुआ, एक ऐसे वर्ग का जो तूफानों को अपने अन्दर ही भेजते रहते हैं। मुझे कालू से हमदर्दी हो गई।

“कालू, तुम्हारे पर कर्जा है, कितना है ?” मैंने पूछा।

“वावू साहब, आपने भी क्या बात पूछी ? मेरे पर कर्जे के सिवाय कुछ नहीं। मेरे पर अहसान तो किसीके हैं नहीं, कर्जा सारी दुनिया का है। मेरे पर ही नहीं, मेरे पास जो कुछ है उसपर भी कर्जा है। इस मरीच ऊंट पर भी कर्जा है, मेरी भैंस पर भी कर्जा है, मेरे खेत पर भी कर्जा है। मेरे वालों पर भी कर्जा है। कर्जा से बची हुई कोई चीज है ही नहीं। सब कुछ चला जाए तो भी कर्जा छोड़कर मुझे नहीं जाएगा। पर...”

“तुम्हारे पर कर्जा है तो तुम्हारे से अलग ऊंट थोड़े ही रह जाएगा !”

“नहीं, वावू साहब। आप समझे नहीं। इस ऊंट पर हजार रुपये का कर्जा है। ऊंट रहन खा हुआ है। ऊंट चल रहा है और साथ-साथ इसपर कर्जा भी। पर यह तो रोजमर्रा का काम। ऊंट भी आदी है। वोभ ढोने का जानवर तो वोभ

ही बोयेगा।" कालू ने ऊट को ऐढ़ लगाई और एक नारा भी 'मरे तेरा चोर'।

ऊट ने यति पकड़ी। ऊट को एक घोरे पर चढ़ना था। ऐसे घोरे पर किसी जीप या ट्रक वाले को भी चढ़ना पड़े तो वह भी ऐंगी हालत में गियर बदलता। मैंने भी बात का निगर बदला।

"देगो, यह घोरे भी अजीब हैं कालू।"

"घोरा सौरा भी है घोर दोरा भी," कालू ने अपनी बोलचाल की भाषा में बात का जवाब देना शुरू किया। "परन्तु घोरा मूल में ईमानदार है।" मैंने कालू के मुह की तरफ देखा।

"देगो, यालू साहब, बात बड़ी सीधी है। घोरे पर चढ़ते हैं तो तकलीफ होती है। उतरते हैं तो उतनी ही मुबिधा होती है। गड़बड़ता हिराव पूरा हो जाता है। घोरा कोई बेगार नहीं रहता।" कालू कहता जा रहा था। और बीच-बीच में टिच्-टिच् भी करता जाता था। ऊट घोरे पर चढ़ता जा रहा था।

"धब हम तितने दूर था गए हैं कालू?" मैंने प्रसंग चलाया।

"यह घोरा धाप में है। जब हम इस घोरे पर चढ़ जाएंगे तो तुम्हें गाव दिशाई देने लग जाएगा।" कालू ने कहा।

थोड़ी देर में ऊट घोरे पर था। सामने गाव के झोपड़े दिखाई दिये और एक गुम्बज भी। लगता था कि पक्का मकान एक ही है। बाकी सारे मकान कच्चे ही दिखाई दिये।

"यह लो, तुम्हारा गाव तो आ गया कालू।"

"अभी तो, पौन कोस तो होगा ही। हम लोहा इसे 'कंवली' एक कोस गिगते हैं।"

"यह पक्का मकान कोई मंदिर मामूम देता है। काहे का है?"

"यह मंदिर है भोमियो जी का।"

"भोमियो जी कौन-से देवता हैं?" मुझे आश्चर्य हुआ।

"भोमियो जी का नाम नहीं सुना?" कालू को आश्चर्य हुआ।

"मैंने और सारे देवताओं के नाम मुने हैं, हनुमानजी, भैरंजी, शनिश्चरजी, रामचन्द्रजी, पर भोमियो जी का नाम नहीं सुना।" मैंने अपनी जानकारी की बात कह दी। "हरेक गाव में एक भोमियो जी होता है और हम कहते हैं कि वह 'सेड़े' का मालिक होता है।" पर कालू ने अभी बात पूरी नहीं की थी कि मैंने पूछ

मिया बि 'मिहा' किसे कहते है।

"जैसे हम गांव का रक्बा है अकारण हठार कीया। यह गांव का गांव रक्बा भोग होना है। रोड़े भ मकर बुद्ध था जयना है, गांव छोड हमने गीन। जहाँ तक इस गांव की सीमा जाती है वह हम गांव का सीमा पहुँचाना है और यह भोमियो जी हम रोड़े का मानित है। हम रोड़े की ररमान्नी का जिम्मा होना है रोड़े के मानिक का। रोड़े के अन्दर रहने वाले धारमियों, पशुओं और हमारी फसलों की रक्षा भोमियो जी करते है। पहले तो हम गांव में पक्का मंदिर था ही नहीं। गांव के बाहर हमने रोड़की 'घरवा' रगी थी। हम उसे भोमियो जी की मेजदूरी कहते थे और वहा एक छोटा-सा पक्करा बना रगा था।

"तीन नान पहने हमने यह मंदिर बनाया। भेरा ही एक ताऊ का बेटा है नालू मेघवाल। उने भोमियो जी का इष्ट भी है और वही दिया-धूप किया करता था। उमने बड़ी मेहनत की, गोड़ा-पहुन चंदा किया और हम गांव वालों ने उसकी मदद की और हम तरह-हम सबने मिसकर यह मंदिर बनाया। यह हमारा देवता है, हमारे रोड़े का देवता है।"

कालू ने मंदिर की ऐतिहासिकता बयान कर दी। ऊंट अपनी गति से चला जा रहा था। उसका मुँह भी चलता जा रहा था।

"यह तो ठीक है। क्या तुम्हारे गांव में और किसी देवता का और कोई मंदिर नहीं है।" भेरे मुँह से निकल गया।

"ना।"

वह काफी देर तक सोचता रहा और न जाने क्या सोचकर बोला, "और न और मंदिर की आवश्यकता ही है।"

"यह कैसे?" मुझे आश्चर्य हुआ।

"बाबू साहब! 'भोमियो जी' के अलावा और देवता हमारे गांव में रह ही नहीं सकते।" कालू ने जैसे बहुत सोचकर बात कही हो।

"यह तो और भी आश्चर्य की बात कह रहा है, समझा तो सही।" मैं कालू की बात में और भी ज्यादा इण्ट्रेस्टिड हो गया।

"देखो, सही और सच्ची बात में तो आश्चर्य होना ही नहीं चाहिए।" कालू ने समझाना शुरू किया, "हमारे गांव में ज्यादातर बस्ती मेघवालों की है। दूसरी जातों के घर तो गिनती के हैं। रामजी, कृष्णजी, हनुमानजी वगैरह का यहाँ

मंदिर हो तो उन्हें भी प्राप्त हो जाए और हमे भी ।”

“तुम्हारी बात तो बड़ी ही मजेदार है । यह कैसे ?”

“आप बात मुनो तो सही,” कालू ने कहना जारी रखा । “ये सारे के सारे बहुत बड़े देवता हैं । इनको सारी दुनिया पूजती है । बड़े-बड़े सेठ-भाहूकार हैं इनके भक्त । ये ऊंचे-ऊंचे दर्जे के भगत इनके मंदिरों में लाखों ही रुपये का चढ़ावा चढ़ाते हैं, बड़े-बड़े प्रसाद चढ़ते हैं । मिथी-मेवा के । केसर का भोग लगता है । फिर बड़े-बड़े पंडित लोग उनकी पूजा करते हैं, धारती उतारते हैं । संस्कृत में, हिन्दी में । इतने बड़े-बड़े देवताओं को भगर गांव में ले आए तो वे भी दुस्र पाएँ और हम लोग भी । हम लोग गरीब हैं जिन्हें भूल से ही ‘भेटा’ करना पड़ता है । कहा से ले आएँ प्रसाद ? कहा से ले आएँ पंडित जो इनकी पूजा करें ? ऐसी हालत में इतने बड़े देवताओं की मिट्टी पसीत करने से पुण्य तो रहा दूर, पाप की गठडी बघती है । क्यों अन्धा न्योते और क्यों दो बुनाए ।

“ फिर इतने बड़े देवताओं को तो सारी दुनिया की फिकर पड़ी है । दुनिया कितनी बड़ी है । हमारा गांव एक छोटा-सा । दुनिया के मुक़ाबिले में तो हमारा गांव ऊट के मुह में जीरा के समान है । इतने बड़े देवता हमारे गांव की फिकर करें । हमारे गाय-भैंस ऊंट की फिकर करें, तो जचने वाली बात नहीं । हमें तो चाहिए था एक ऐसा देवता जिसे हमारे गांव की फिकर हो, हमारी फिकर हो, हमारे पशुओं की फिकर हो । मान लो कि कल हमारे ऊंट का पेट दर्द करने लगे तो भगवान राम क्या करें । रामचन्द्रजी के मंदिर में जाकर कोई भर्दास करे कि महाराज हमारे ऊंट का पेट ठीक कर दे तो कितनी भटपटी बात लगे । यह तो हाथी से हल चलवाने की बात हुई । रामचन्द्रजी को कहाँ फुरसत कि वे ऊंट के पेट ठीक करें । रामचन्द्रजी महाराज तो अयोध्या में पैदा हुए, राजा के बेटे थे, उन्हें ऊंट की बीमारियों और उन्हें ठीक करने का क्या पता ?

“ हमारा भोमियो जी तो इस गांव के देवता है, मालिक है । उन्हें इस गांव की सीमा से बाहर की चीज से कोई लेना-देना नहीं । ऊंट को पेट दर्द हुआ कि हम भट में उनके पास पड़च गए । ऊंट को भी साथ में ले गए कोई डोप, ताती लेकर उनका नाम लेकर ऊंट के बाप दो । ऊंट ठीक हो गया, गाय ठीक हो गई ।

“ भोमियो जी के हमसे बड़कर कोई भक्त नहीं । न वे कहते हैं कि हमारे प्रसाद के लिए पड़े साधो, रखगुले । हम जो खाते हैं, उन्हें खिला देते हैं, वे प्रसाद ग्रहण

कर लेते थे। उन्हें कुछ ही गिना था। 'बाकला' भीगी हुई बाजरी की घूमरी, बड़े, गुलगुले सब बरतते थे।

"उनकी पूजा के लिए पढ़े-लिखे पुजारों की आवश्यकता नहीं। 'भोमियो जी को न मंस्कृत आती है और न शर्त ही लगा रहीं हैं कि उनकी आरती संस्कृत में हो या हिन्दी में। बस रूप में दिया और काम पूरा हुआ। कोई प्रदक्षान करनी हो तो मन में ही प्रदक्षान कर लो।"

"इन सब के अलावा, इस गांव में सबसे ज्यादा हैं मेघवाल। मेघवाल का भगवान बना करे? भगवान की जूतिया गाठनी हो तो मेघवाल काम प्रा सकता है। आप ही बताओ, क्या मेघवाल भगवान् का पुजारी हो सकता है? पर भोमियो जी इन सब बातों का विचार करते ही नहीं। भोमियो जी का भोपा कोई ही हो सकता है। न कोई जात न पांत।"

"कालू, तू तो कमान की बात करता है, तू तो ऐसी बात करता है जो न तो मैंने आज तक पढ़ी और न सुनी।"

मैं अपने मन के उद्गार व्यक्त करता, पर कालू में तो जैसे कोई इन घोरों में भटकती हुई कोई घोरों की रूह घुस गई। घोरों में जब जोरदार आंधी आती है तो वह किसीका कहना नहीं मानती। घूल का तूफान बड़ा भयंकर होता है, घूल में दब जाते हैं, आदमी, ऊंट। कालू में बस घोरों की रूह कहां या घोरों में घूल खाता हुआ कोई भूत घुस गया। कालू ने कहना जारी रखा :

"यही तो बात मैं कह रहा था, याबू साहब। जब आपको मेरी बात नई और अनहोनी लग रही है तो फिर वे देवता जिन्हें हम-आप लोग पूजते हैं, वे कैसे हमारी बात समझ सकते हैं। वेकतई हमारी बात नहीं समझ सकते हैं। यह भी आप समझ लो कि हमें बड़े देवताओं की जरूरत ही नहीं। हमें कलेक्टर का क्या लेना, कलेक्टर कैसा ही हो। हमारा काम पटवारी से पड़ता है, अगर हमारा पटवारी ठीक है, वह हमारी सुनता है। वह अपनी कितावों में, वहीखाता में हमारा काम नहीं बिगाड़ता तब तक हमें कोई दिक्कत नहीं। कलेक्टर खुश हो यानाराज, हमें क्या फरक पड़ता है। पहली चीज तो यह है कि कलेक्टर का काम पड़ता है बड़े-बड़े लोगों से। हममें से कोई उसके पास चला जाए तो वह हमसे क्या बात करे, हम उससे क्या बात करें? मान लो कि हम उनसे कहें कि साहब, हम इस जिले में फलां-फलां गांव में रहते हैं तो पहले तो कलेक्टर को गांव का नाम ही नहीं मालूम होगा जब तक

वह कोई रजिस्टर न देख ले। रजिस्टर देखकर उसने यह भी जान लिया कि फला-फला गांव बहा है तो उससे भी क्या हुआ? वह न तो मुझे जानता है और न मेरे बाप को। मैं तारा को सिखा करू तो भी वह हा-हू करके टरका देगा या कह देगा कि फला-फला अफसर से मिल। अगर मैं यह कहने की गुस्ताखी करू कि मैं तो आपके जिले की प्रजा हूँ, आप जिले के मालिक हैं, इसलिए आप और मेरा रिश्ता मालिक और बन्दा का रिश्ता है, तो आप ही ब्रन्दाजा लगा लो, ऐसी हालत में मेरे साथ क्या हो सकता है। हो सकता है कि वह मुझे धक्का देकर निकलवा दे। उसकी तो जीभ हिलनी चाहिए, सिपाही तैयार बैठे हैं, फौज तैयार बैठी है। अगर वह जरा नैकदिल और मेहरबान हुआ तो कह देगा कि तरे जैसी प्रजा लाखों में बैठी है। तरे अकेले का कोई ठेका है, मेरे पास टाइम नहीं है, जाओ। मेरे पास क्या रह जाएगा सिवाय उसके कि मैं अपना-सा मुह लेकर धुपचाप आ जाऊँ, अपने गांव में। तो बाबू माह्व, बड़ा कोई हो, भादमी हो या देवता, अपने-आपमें एक बड़ी बीमारी है। बड़े भादमियों की बड़ी बीमारियों की बजह से ही आज दुनिया दुखी है। बीमारियाँ उनकी और दुख पाएँ हम लोग, छोटे लोग।”

कासू! मैंने बात कहनी चाही। पर कासू तो धोरो की भाषी के वेग से उड़ रहा था, वह अब किसीकी क्या सुने? उसने कहना जारी रखा।

“बड़े भादमियों की दो बड़ी बीमारियाँ होती हैं और अगर इन बीमारियों का समय पर इलाज नहीं होता है तो घासपास के लोगों को भी मरना पड़ता है और खुद बीमार को भी।” मैं बीच में कुछ कहूँ उससे पहले ही उसने दोनों बीमारियों के नाम बता दिए—“पेट का बड़ना और चोंच का बड़ना।”

‘ये क्या बीमारियाँ हैं?’ मैं चौंका।

“यही तो बात है।” कासू जोर से हसा और कहना चला गया। “जब भादमी बड़ा होना शुरू होता है तो उसके चोच घाना शुरू हो जाती है, जैसे चींटी के पर। चोंच शुरू में तो छोटी होती है पर ज्यों-ज्यों उसके जय-जयकार के नारे शुरू होते हैं तो उसकी चोच बढ़नी शुरू हो जाती है और माप-माप में उसका पेट भी। देखो, जैसे लोग कहते हैं कि मंत्रों में ताकत होती है वैसे ही इस जय-जयकार में भी यह ताकत होती है, चोच उगा देती है और उगका बड़ना शुरू हो जाता है। चोच के साथ पेट का भी हिस्सा है। जब तक यह जय-जयकार चलती रहती है सब तक ये दोनों चीजें बढ़ती रहती हैं। जितनी जोर से जय-जय-

कर लेने दे। उन्हें कुछ ही दिना थी। 'बाकवास' भीगी हुई बाजरी को घूबरी, बड़े, गुलगुने सब खाती है।

"उनकी पूजा के लिए पड़े-लिपे पुतली को आवश्यकता नहीं। 'भोमियो जी' की न संस्कार आती है और न दर्शन ही क्या रखी है कि उनकी आरती संस्कार में हो या किसी में। राम भूष से दिया कोर काम पूरा हुआ। कोई घरदार करती ही तो मन मेरी संस्कार कर लो।

"इन सब के अभाव में, हम मान में सबसे ज्यादा है भेषवाल। भेषवाल का भगवान क्या करे? भगवान की ज़रिया माछरी तो तो भेषवाल काम प्रा करता है। आप ही बताओ, क्या भेषवाल भगवान का पुतारी तो करता है? पर भोमियो जी इन सब बातों का विचार करने ही नहीं। भोमियो जी का भोपा कोई ही हो सकता है। न कोई जात न पात।"

"कालू, तू तो कमाल की बात करता है, तू तो मेरी बात करता है जो न तो मैंने आज तक पढ़ी और न सुनी।"

मैं अपने मन के उदगार व्यक्त करना, पर कालू में तो जैसे कोई इन घोरों में भटकती हुई कोई घोरों की तरह घुम गई। घोरों में जब दोरदार झांघी आती है तो वह किसीका कहना नहीं मानती। पूल का तूफान बड़ा भयंकर होता है, पूल में दब जाते हैं, आदमी, जंतु। कालू में बस घोरों की तरह कहां या घोरों में घूल जाता हुआ कोई भूत घुम गया। कालू ने कहना जारी रखा :

"यही तो बात मैं कह रहा था, बाबू साहब। जब आपको मेरी बात नई और अनहोनी लग रही है तो फिर वे देवता जिन्हें हम-आप लोग पूजते हैं, वे कैसे हमारी बात समझ सकते हैं। वे कतई हमारी बात नहीं समझ सकते हैं। यह भी आप समझ लो कि हमें वड़े देवताओं की जरूरत ही नहीं। हमें कलेक्टर का क्या लेना, कलेक्टर कैसा ही हो। हमारा काम पटवारी से पड़ता है, अगर हमारा पटवारी ठीक है, वह हमारी सुनता है। वह अपनी किताबों में, बहीखाता में हमारा काम नहीं बिगाड़ता तब तक हमें कोई दिक्कत नहीं। कलेक्टर खुश हो या नाराज, हमें क्या फरक पड़ता है। पहली चीज तो यह है कि कलेक्टर का काम पड़ता है वड़े-बड़े लोगों से। हममें से कोई उसके पास चला जाए तो वह हमसे क्या बात करे, हम उससे क्या बात करें? मान लो कि हम उनसे कहें कि साहब, हम इस जिले में फलां-फलां गांव में रहते हैं तो पहले तो कलेक्टर को गांव का नाम ही नहीं मालूम होगा जब तक

रजिस्टर देखकर उसने यह भी जान लिया कि मे भी क्या हुआ ? वह न तो मुझे जानता है और आज करू तो भी वह हा-डू करके टरका देगा या र से मिल । अगर मैं यह कहने की गुस्ताखी करूँ तो हूँ, आप जिले के मालिक हैं, इसलिए आप और का रिश्ता है, तो आप ही भ्रन्दाजा लगा लो, ऐसी ता है । हो सकता है कि वह मुझे धक्का देकर निकनी चाहिए, सिपाही तैयार बँठे है, फौज तैयार व और मेहरबान हुआ नो कह देगा कि तेरे जैसी गले का कोई ठेका है, मेरे पास टाइम नहीं है, जाओ । अब उसके कि मैं अपना-सा भूह लेकर चुपचाप भा साहब, बड़ा कोई हो, भादमी हो या देवता, अपने-पड़े भादमियों की बड़ी बीमारियों की वजह से ही या उनकी और दुख पाए हम लोग, छोटे लोग !" राही । पर कालू तो घोरो की भाषी के बेग से उड़ चुने ? उसने कहना जारी रखा ।

दी बीमारिया होती हैं और अगर इन बीमारियों है तो मासपास के लोगों को भी भरना पड़ता है । बीच में कुछ कह उससे पहले ही उसने दोनों बीमार का बड़ना और चौच का बड़ना ।"

?" मैं चौका ।

कलू जोर से हँसा और कहता चला गया । "जब तो उसके चौच थाना शुरू हो जाती है, जैसे चीटी की होती है पर ज्यों-ज्यों उसके जय-जयकार के नारे उदनी शुरू हो जाती है और साथ-साथ में उसका ते है कि मत्रो में तानन होती है वैसे ही इस जय-गी है, चौच उगा देती है और उसका बड़ना शुरू ट का भी हिसाब है । जब तब यह जय-जयकार नो चीजें बढ़ती रटती हैं । जितनी जोर से जय-जय-

कार होती है उसकी ही तेजी से दोनों चीरें बढ जाती है और एक समय ऐसा आता है जबकि उसका पेट भी बहुत बढ जाता है। बढा हुआ पेट तो बढी हुई भूख । पेट के दिग्बाव से भूख होती है। नतीजा यह होता है कि 'माटा भोवर' जो जो कुछ भी मिलता है, गा जाता है। पून गा जाता है। मागों-करोड़ों न्यूबिक फुट बूल गा जाता है, पत्थर गा जाता है, और सरनों बेचारी टापती रह जाती है। नहरों उनके पेट में, नहरों उनके पेट में। नहरों किमानों के गेतों को क्या पानी है ? लोगों के दिन मुरा रह जाते हैं क्योंकि नहरें तो नह भी जाता है। गेतों का घान पढ गा जाता है, गाद बढ गा जाता है। गाद कमी हो, देगी-बिन्नापती, कूड़ा कर-कट, गांवर। लोग उसका पेट फूलने हुए देगते हैं तो छरकर उसके पेट की जय बोलते हैं, पर जय-जयकार से तो उसका पेट फिर बढता जाता है। सब लोगों के पेटों में पानी बोलने लगता है। ग्रामवास के नारे पेट निकुड़ने लगते हैं और चारों ओर आशंका होती है कि सारे पेट इस बढे पेट में जाएंगे।"

'यह तो कोई विराट पेट हुआ।' मुझसे रहा न गया।

"कहते हैं कि कृष्णजी महाराज ने अर्जुन को विराट रूप दिखाया था। विराट भगवान का पेट भी इतना विराट नहीं होगा। मेरा तो यह हयाल है कि विराट भगवान भी विराट पेट देखते तो भगवान अपने विराट स्वरूप को समेटकर एक मच्छर बनकर भों-भों करते हुए भाग खड़े होते।"

"यह तो एक बीमारी हुई।" मैं हंसा। और दूसरी बीमारी भी तो है।

"हां, वह भी कोई कम नहीं। चोंच बढ़नी शुरू होती है तो चोंच बढ़ती ही जाती है।"

"हाथी की सूंड की तरह?" मैंने बीच में छर्रा छोड़ा।

"क्या बात करते हो, बाबू साहब?" कालू के स्वर में उत्तेजना थी और उसी स्वर में कहता गया। "हाथी का सूण्ड क्या होती है? यह चोंच कोसों लम्बी होती है। जहां-जहां चोंच जाती है, वहां कोई रह नहीं सकता। इसका नतीजा यह होता है कि जगह खाली करो, दुबक रही, चोंच का खयाल रखो, चोंच से बचकर रहो। लोग चोंच को देखकर चोंच की जय-जयकार करने लगते हैं ताकि उनकी चोंच से मुड़भेड़ न हो। परन्तु लोग, हम जैसे गरीब लोग यह नहीं समझते कि यह काम तो उलटा हो रहा है। इलाज के वजाय बीमारी बढ रही। जय-जयकार इलाज नहीं, बीमारी का बढ़ावा है। इस तरह ये बड़े-बड़े लोग,

हमारे बड़े-बड़े नेता लोग जब निरुलते है तो अपनी बड़े-बड़े पेटों को लिए हुए, अपनी बड़ी हुई चोंचों को लिए हुए, तो लोग डर के मारे उनकी जय-जयकार करते हैं। बड़े-बड़े पेट देखकर समझते हैं कि ये तो गणेशजी हैं। कलिभुग में गणेश जी की सूड चींच बन गई है। पर इन्हें क्या पता कि ये सूड-सुण्डाले गणेश विघ्न-हारी नहीं विघ्नकारी है। पर ये गरीब लोग बेचारे"... कहते-कहते कालू का स्वर मद हो गया।

"पर इसका नतीजा क्या होगा ?" मैंने प्रश्न किया।

"नतीजा तो मौत ही है। ये लोग मरेंगे, ये बड़े लोग, ये नेता लोग मरेंगे तो सही, पर करोड़ों गरीबों की बेमतलब मरना पड़ेगा।"

"क्या बीमारी का इलाज नहीं है ?"

"है तो सही।"

"तो फिर इलाज क्या है, बोलो ?" मेरी उत्सुकता उछाले मारने लगी।

"इलाज तो है, पर महंगा, और दवाई भी कई दिन तक चलेगी, परहेज भी रखना होगा, कोई मामूली सट्टे तो है नहीं जो एक पुड़िया ली और शान्त हो गया।" कालू ने कहा।

"इलाज बताओ।"

"इलाज शुरू करने से पहले यह जय-जयकार बन्द हो। जयजयकार बन्द होने से पहले रोग बढ़ना तो बन्द हो जाएगा। फिर..." कालू रुक गया।

"फिर ?" मैं बोला।

"फिर इलाज शुरू करने की बात हो सकती है। इतनी बड़ी भयंकर बीमारी का इलाज भी कोई आसान नहीं। इलाज के बाद पथ्य भी आसान नहीं है।" कालू गंभीर हो जाता है।

"इलाज तो बतलाओ।" मेरी उत्सुकता अन्दर ही अन्दर उछलने लगी।

"बात यह है कि पेट और चोंच का इलाज एकसाथ शुरू होना चाहिए। यह नहीं हो सक्ता कि पेट का इलाज अलग से शुरू हो और चोंच का अलग से हो। एक आदमी, कुछ आदमियों के साथ मैं, हाथ में संजर और बघनना लेकर उस महाजलोदर वाले पेट पर हमला करे बिजली की गति से, और उसकी नाभि में संजर घुसेड दे। एक ही बार में। जैसे दसहरे के रोज यह शर्त होती है कि भैसे का चक्कर करने के लिए तलवार वह व्यक्ति ही उठाए जो एक ही मटके

में उसका मिरा मरु में खाना कर दे। जैसे ही मंजरपारी के हाथ में इतनी ताकत होती चाहिए कि मंजर एक ही भाव में उसकी नाभि में पूरा का पूरा घुसने जाए और रामनाथपारी उस स्थान पर अपनापन में उसी स्थान पर चार करे। अगर यह सारा काम पूरा नहीं हो तो सारा शीत स्थान पर पूरी ताकत में चोट हो तो फिर एक जवानपारी फूट पड़ेगा। उमर पेट में खाना निकलेगा। कान्ही-पीन्ही-पीन्ही जैसे फूटेंगी। रामनाथ के चोट समझेंगे कि कोई भूकम्प आ गया। अचानक गर्जना से निकलने वाली गैसों से ऐसा लगेगा कि किसी घमनमट्टों से आग की लपटें निकल रही हैं। यह भी संभव है कि यह उस नावा के नीचे दबकर मर जाए, वे दबनेवाले भी दब जाएं। दबने की मूर्खता कम है परन्तु सिर पर कपल बांधकर मरने के लिए कुछ लोग भी चाहिए ही। यह तो हुई एक मोर्चे की बात। दूसरे मोर्चे पर भी काम जरूरी है। यह भी एकमात्र हीना जरूरी है। इस मोर्चे पर भी कई आदमी चाहिए। वे लोग कुल्हाड़ियां, गंडाते, परसे आदि से सज्जित हों। रामनाथ उसकी चोंच दबाकर मारे ही जाएं और कुल्हाड़ियों, गण्डातों तथा परसों से उसकी चोंच पर प्रहार करें ताकि उसकी चोंच के टुकड़े-टुकड़े हो जाएं। सबसे पहले उसकी चोंच का वह अग्रभाग जो सूत्रों की 'ईपी' की तरह तैज है, कटना चाहिए। ज्यों ही उसकी बड़ी हुई चोंच कट जाएगी, पेट फूट जाएगा, सारी गैसें निकल जाएंगी और वह...

“वह मर जाएगा ” में बोल उठा।

“नहीं, वावू साहब। वह मरेगा नहीं। कुछ देर बाद वह होश में आएगा। चोंच भड़ जाने के बाद वह अपनी जीभ को काम में लाएगा। अभी तक तो वह चोंच ही भिड़ाता रहा था, अब वह जीभ से बोलेगा। आदमी की तरह। हमारी तरह, हमारी भाषा में। पेट भड़ जाने के बाद, वह अपने पेट की तरफ देखेगा और फिर हमारे चिपे हुए पेटों की तरफ देखेगा।”

“तुम्हारा नुस्खा है तो जोरदार, कहां से लाए कालू ?” मैंने पूछा।

“लाया कहीं से नहीं, मैंने तो कथा सुनी थी।”

“कौन सी, कहां पर ?”

“यहीं लोगों से। रामायण की कथा। कहते हैं कि रावण मरता नहीं था। राम ने बड़ी कोशिश की। अन्त में विभीषण ने बताया कि इसकी नाभि में दार करो वरना यह मरेगा नहीं। ऊंट पर चलते हुए, खेत में काम करते हुए, मरे हुए

जानवर की ताश चीरते हुए, मुझे रामायण की यह बात याद आ जाती है तो मैं अपने ढंग से सोचने लगता हूँ और यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि कोई-सा युग क्यों न रहा हो, चाहे सतयुग हो या त्रेता, उस युग का ऊँट भी मेरे ऊँट की तरह ही रहा होगा, भार ढोने के ही काम आता होगा, घोड़ा भी जूतता ही होगा, चागे में नहीं तो रथ में। लोग चुगलखोर भी होंगे, स्वार्थी भी होंगे, दूसरों की औरतों पर भी बुरी नज़र रखते होंगे, मौका पढ़ने पर भगाकर ले जाते होंगे। देवता लोग भी ठगी करते थे।

“ रावण कहते हैं कि ब्राह्मण था, पर लोगों ने उसका जय-जयकार करके उसका खोपड़ा फुला दिया। फिर एक खोपड़ा से दो खोपड़े, दो से तीन और बढ़ते-बढ़ते दस खोपड़े। उसके मूल में बात वही। लोगों की जय-जयकार से उसका खोपड़ा बढ़ गया होगा। वह ब्राह्मण से राक्षस बन गया जैसे आज का नेता रक्षक में भक्षक बन जाता है। तस्कर बन जाता है।

“ आखिर दस खोपड़े तीव्रने ही पड़े। उसकी नाभि सुखानी पड़ी। ऐसा हर युग में होता है, क्या त्रेतायुग, क्या कलियुग। खोपड़े बढ़ेंगे, चोच बढ़ेंगी। भस्मासुर तो हर युग में रहेगा। अगर उसको कड़ा दे दिया गया तो वह तो फिर सबसे सिर पर कड़ा फेरता ही रहेगा। कड़ा चाहे सोहे का हो या सत्ता का हो, अगर मिल गया तो फिर भस्मासुर कैसे रहेगा? भस्मासुर ही उसको ही खाने की कोशिश करेगा जिसने उसको कड़ा दिया, सत्ता दी।

“ जब-जब भी इस प्रकार कड़ा जिस किसीको दिया जाएगा, तो वह तो भस्मासुर हो जाएगा। कोई फर्क नहीं पड़ता, आपने कड़ा किसको दिया?—माने वाला चाहे देव हो या मानव, नेता हो या सेवक, अन्त में तो भस्मासुर ही बनेगा, रावण बनेगा। राक्षसी मर्जा को प्राप्त होगा। राक्षस को मारने में, वही दिव्यभक्त, वही एक रास्ता, नाभि से पकड़ो। परन्तु इसके लिए जिम्मेवार...”

“कौन है?” मैंने सवाल किया।

“ जिम्मेवार हैं वे सारे लोग जिन्होंने ‘जय-जयकार’ किया। कण्ठ फाड़कर। यह सामने खोज़ी की पेड़ देखते हो। खोज़ी ही क्यों, कोई पेड़ लें लो, उसकी टाइम-टाइम पर छंगारि होनी ही चाहिए। उसकी छंगारि नहीं हुई तो इसकी बढ़ो-तरी ऊँचूक हो जाएगी। इसमें कांटे ही काटे हो जाएंगे। इसकी टहनियाँ, इसकी शाखाएँ मनमाने ढंग से बढ़ती जाएगी। नतीजा यह होगा कि पेड़

दुग-भेदा हो जाएगा। राजनी को धामने नहीं देगा। चाप इसके नीचे गाट टानकर सो नहीं मर्कते। कोई भाड़ियों मर्कते को धामने नहीं देगा। अगर इसके नीचे कोई पीज बनयेगी तो यह होगी चाप, बिज्जू, उल्लुधों के घोंसले।

“वेड़, नेता और देवता नगैरह को छंगार्डे समय-समय पर होती ही रहती चाहिए। वेड़ कोरे बनमहोदय से धिगड़ जाता है, उसका स्वागत कुल्हाड़ी से भी होना चाहिए। नेताओं का स्वागत भी कोरी फूलमालाओं से ही नहीं, जूते-चप्पल तथा अण्डे फेंककर भी करना चाहिए। नेता और जनता का हित इसीमें है। शिवजी का एक भक्त शिव की भक्ति दो जूते लगाकर करता था और शिवजी कभी नाराज न हुए। एकाएक ऊंट ठहर गया। ऊंट को भी एड़ लगनी चाहिए। कहते-कहते उसने ऐड़ लगाई।”

मुझे हंसी आ गई।

“लो, यह हमारा गांव आ गया। यह रहा भोमियो जी का मंदिर।” कालू बोला।

“खेड़े के मालिक के दर्शन भी कर लिए जाएं। जब मैं इसके खेड़े में आया हूं तो मालिक के यहां हाजिरी तो मंटानी ही चाहिए।” मैंने कहा तो कालू जोर से हंसा।

“बिल्कुल ठीक।” उसने हंसते हुए कहा।

ऊंट बिठलाया गया। हम दोनों उतरे। मंदिर क्या था, एक छोटी-सी छतरीनुमा मंदिर। एक चौकी पर दो पैरों के निशान थे।

“यह हैं पगलिये।” कालू ने कहा, “हम लोग इनकी ‘धोक’ खाते हैं।”

“क्या भोमियो जी की मूर्ति नहीं होती?” मैंने पूछा।

रामदेवजी और भोमियो जी की मूर्ति नहीं होती। केवल पैरों के निशान ही पूजे जाते हैं। हम तो बूद्र हैं और शूद्र लोग पैर ही पूज सकते हैं। खोपड़ियां तो ब्राह्मणों के पास रह गईं।” कालू ने मेरे से चुटकी ली।

“यह आ गया मेरा भाई लालू। यही यहां का भोपा है। घूपदीप करता है।

मैंने हाथ जोड़े और उसने भी।

लालू ने मुझे एक भस्मी की चिऊंटी दी और मैंने भस्मी का तिलक लगा लिया।

“पास में एक राजपूतों का घर है। पानी मंगवा दूं। हाथ मुंह-धो लो।

थकावट मिट जाएगी।”

“क्यों बाबा, तुम्हारे घर में पानी नहीं?” मैंने पूछा।

“है तो क्यों नहीं? पर हम लोग मेघबाल हैं और भाप ब्राह्मण।”

“सो उससे क्या है, मैं तो पीता हूँ, मैं कोई छुप्राछुत नहीं मानता हूँ।” मैंने कहा।

“यह तो हो सकता है, कभी-कभी आप गोमूत्र भी खो पीते हैं?” कालू ने चूटकी ली।

“नहीं, बाबा, मेरा कई बार काम पड़ा है, मैंने उनके महा खाया है और खिलाया है।”

“मैं कब इसे भूठ समझ रहा हूँ। आप लोग तो श्राद्धपक्ष में कौथो की भी पूरे पन्द्रह दिन खिलाते हैं, पर ब्रेचारे कौथों की तो सद्गति नहीं हुई न, उनका काव-काव से पिण्ड छूटा और न गंदगी में।” लगते हाथ कालू ने एक लट्ठ-सा मार दिया।

“कालू, तू आदमी तो जोरदार है।” मैंने अपने-आपको हतप्रभ मानते हुए कहा।

“मैं क्या, मेरी सात पीढ़ियों में कोई जोरदार नहीं हुआ और न मेरी आने वाली सात पीढ़ियों में कोई जोरदार होगा,” यह है मेरी भविष्यवाणी और चौदह पीढ़ी का हिसाब।” कालू ने कहा।

“तू यह सोचता होगा कि तू चमार है मत. तू व तेरी आने वाली पीढ़ी तरक्की नहीं कर सकती, अगर यह सोचता है तो सोचना गलत है।” मैंने चालू मुहावरे में बात की, “आज के युग में कोई जाति-पांति नहीं है और जन्म से कोई छोटा-बड़ा नहीं होता।”

“महाराज बात समझे नहीं, मेरे मन की।” कालू सिर हिलाने लगा।

“तो तेरा मतलब?” मैंने उसकी तरफ देखा।

“मैं चमार हूँ और महाचमार बनने के लिए तैयार, विलुल राजी मन से, कभी कोई सिवायत नहीं कहेगा कि लोग मुझे मे छुप्राछुत बरतते हैं, पर मेरी एक बात है,” कालू ने कहा।

“वह क्या है?” मेरे मुह से निकल गया।

“कोई पाच लाख की साटरी खून जाए, या कही दवा घन मिल जाए तो

फिर देखो।" कालू अनागत भविष्य में दृश्य गया और मन के लम्हू गाने लगा।

"तो फिर क्या करेगा। कालू !" मैं भी एकदम ताउट मूढ़ में आ गया।

"क्या कर्म ? पहले अपने भोगियों की कामना रख कर्म। भोगियों की कामना मन्दिर बनाऊँ कि मन्दि में सारे देवता मन्त्रों दर्शन दें और कहें कि हमारा भी ऐसा ही मन्दिर बना। फिर उन ऊँट को घी दूँ और गहूँ ऊँट भी क्या गाने रखे, इसके लिए सोने का गहना बना दूँ। सोने का काम किया हुआ ऊपर भूल। जब मैं इनपर चढ़कर चला तो ब्राह्मण-वनिजों मुझे सलाम करें। आज न कोई जात है न पान। न कोई ब्राह्मण है न शूद्र। जाति दो ही है—एक जिसके पास पैसा है और एक जो मुफलिस है। बाबा 'रूपली पते तो रोई में चते'। पर छोड़ो इन चीजों को। यह पानी ले आया। हाथ-मुँह धोओ। अगर आपका मन माने तो थोड़ी रावड़ी मिला दूँ।" कालू बोला।

"रावड़ी के लिए तो शेरशाह हिन्दुस्तान की हुकूमत गंवाने को तैयार हो गया था। जरा मंगवा ले, घूप में ठीक रहती है।"

"इसका मतलब, शेरशाह मूर्ख था या रावड़ी समझ गया होगा।"

जब मैं रावड़ी पी रहा था तब कालू बोला कि मुझे उसका लड़का छोड़ आया। उसने धमा-याचना के स्वर में कहा कि उसे रोत जाना भी जरूरी है तथा कुछ कुत्तर करनी है। उसका पन्द्रह वर्षीय लड़का उसे छोड़ आया। मैंने भी हाँ कर दी।

उसने रामा-श्यामा के साथ मुझे विदा दी। 'कड़ा काठा' कुछ भी कह दिया हो, उसके लिए माफी मांगी।

ऊँट रास्ते चल पड़ा। ऊँट आगे को चल रहा था, और मेरे दिमाग में पुरानी रील पुनः चल रही थी।

ऊँट चल रहा था... गांव आ गया। मैं चौंका। घड़ी की तरफ देखा तो एक सुई गायब नजर आई। सूरज सिर पर था। सिर के तो बाल ही नहीं दिखाई देते। मैं ऊँट से उतर आया, पर कालू अभी भी मेरे दिमाग से उतरा नहीं था।

कुछ सवाल जो मुझसे सुलझते नहीं

वैसे कोई बड़े-बड़े सवाल नहीं हैं कि पीमागोरस की प्रतिभा की आवश्यकता पड़े। छोटे-छोटे सवाल; देखने में बहुत ही सीधे। रोजमर्रा के। सरल। पर, समाधान ! अपनी समझ तो साथ नहीं देती, आप यदि सहायता करें तो स्वागत है।

इजाबत हो तो बात कहूँ ?

बात बचपन की है। मैं छोटा ही था। हमारे एक गाय होती थी। बहुत दूध देती थी। परन्तु वह एक तरीके से दूध देती थी। मा दूध निकालती थी, तब मेरा काम होता था कि गाय को 'चाटा' डालता रहूँ। धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा। थोड़ी-सी चूक हुई कि गाय 'बूद' जाती। मुझे डाट पड़ती।

मैंने कई बार सोचा : गाय ऐसा क्यों करती है ? अजीब-सी बात है; दिन भर खिलाओ-पिलाओ। मगर दूध निकालने के समय अगर 'चाटा' न डाला गया तो दूध 'बड़ा' लेगी। दिन-भर भूखी रखो, पर दूध निकालने के वक्त अगर चाटा चटवाते रहो तो दूध दे देगी।

गाय का यह व्यवहार मेरी समझ में नहीं आया। बहुत सिर मारा। गाय को दूध चढ़ा लेने में क्या फायदा ? दूध बनों में सूख जाएगा। उसकी दूध देने की क्षमता घट जाएगी और उसी अनुपात में उसकी उपादेयता भी। पर, गाय को कौन समझाए ? गाय कैसे समझे ?

मैंने मा से यह बात कही, पुरजोर शब्दों में।

"यह तो 'वाण' है। 'वाण' 'कुवाण' भी हो सकती है। 'उसने मुझे समझाया। मेरी मा 'पाबलोव' नहीं थी और न उसे कोई कुण्डायो का ज्ञान ही था। मेरी समझ की परिधि में कोई बात धुसी नहीं।

कम की बात है। कुछ लड़के सामू थोड़ा करने वाले कि गणतंत्र दिवस के समय पर चांगीजिव होने वाली परेड में भाग लेने वाले लड़कों को नामता दिल-वाया जाय।

"पर उनकी ही क्यों ? बाकी लड़कों को क्यों नहीं ? गणतन्त्र तो सबके लिए है।" मैंने कहा।

"यह लड़के परेड छोड़े ही कर रहे है, सर ?" छात्र-नेता बोल उठा।

"तो, तुम्हारा मतलब यह हुआ कि नामता दो तो लड़के परेड करेंगे, नहीं तो नहीं, गणतन्त्र दिवस से क्या लेना ?" मैं बात पूरी भी न कर पाया या कि एक लड़का बोल उठा : "हमेशा से ऐसा होता आया है, सर ! नई बात तो है नहीं।"

मुझे गाय की बात याद आई। मां की बात याद आई। लड़कों को 'चाटा' चाहिए। 'वाण' 'कुवाण' पड़ी हुई है।

"मैं तुम्हें पच्चीस पैसे 'पर हेड' से क्यादा नहीं दे सकता। यह रही इस मद की बजट पोखीशन," अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए मैंने कहा।

"ठीक है, सर, एक कप चाय ही पी लेंगे।" नेता लोग मान गए। मेरी समझ में बात भा गई कि इन्हें तो 'चाटा' चाहिए। ग्वानटिटी या ग्वालिटी से कोई सरो-कार नहीं। चाय में कौन-से विटामिन व प्रोटीन होते हैं, वे समझने की कोशिश नहीं करेंगे।

विभागीय आदेश !

अध्यापकों से अपेक्षा की गई थी कि वे ग्रीष्मावकाश में या लेजर टाइम में प्रौढ़ शिक्षा में भाग लें।

अध्यापकों की मीटिंग बुलाई गई। पूरा का पूरा आदेश पढ़ा गया और बाह्यान किया गया कि इच्छुक अध्यापक आने जाएं।

"ऐसे अध्यापकों को इन सेवाओं के एवज में क्या मिलेगा ?" एक जिज्ञासु महानुभाव तपाक से किन्तु तैश में पूछ बैठे।

"प्रशस्तिपत्र," मैंने वातावरण को हल्का बनाने की गरज से कहा।

"उसको चाटें क्या ?" एक प्रतिक्रिया। कहां से, या किस कोने से, मैं जान न सका।

“तो फिर, कोई चाटा होना चाहिए ?” मैंने बात उछाल दी, इस गरज से कि बात ठण्डी न पड़ जाए ।

“आप किस सहजे में बह रहे हैं ?” स्टॉफ सेक्रेटरी राटा हुआ । उसने बहना जारी रखा, “पर यह तो व्यायमगत बात है कि ऐसे अध्यापको के लिए कोई न कोई ‘इनसेण्टिव’ तो होना ही चाहिए । चाहे पूरी तनस्वाह पर छुट्टी का हक हो, इम्ति-हान देने की ‘परमिशन’ में प्राथमिकता हो, या कोई रोकड़ी भत्ते के रूप में हो ।”

सेक्रेटरी ने स्टॉफ की ओर से मन्तव्य स्पष्ट किया । अध्यापको की मुखमुद्रा से ऐसा लगता था कि सेक्रेटरी का सामूहिक स्वर था ।

“ठीक है, ठीक है, मैं समझ गया,” मैंने स्वीकार किया और यह भी समझ गया कि सम्म भाषा में ‘चाटा’ का पर्यायवाची शब्द ‘इनसेण्टिव’ है और उसके चाचाजात भाई हैं ऐवाइं और रिवाइं भी ।

लगता है चाटा और इनसेण्टिव का मूलतः सम्बन्ध यही है जोकि कठपुतली और मिनेमा का है । ध्येय एक । सोशल झंजं एक । मुझे अपने गवारु बैंकप्राउण्ड पर नेंप जरूर भाई ।

“कर्मचारियों की हड़ताल टूट गई । सरकार ने माग मान ली । भन्तरिम सहायता के बतौर कम-से-कम दस रुपये प्रति माह, पन्द्रह रुपये प्रति माह से अधिक किसीको नहीं ।” एक न्यूज ब्राइटम ।

पना नहीं पहा कि माध्यम पी. टी. भाई. है या यू. एन. भाई. । लगता है कि समाचार प्रचिहृत ही है ।

“कितनी खुशी की बात है,” मैंने अपने मन में कहा, “अब मैं एक पान और एक कप चाय और पी सकता हूँ ।”

मेरी मुसीब्यादा देर न टिक सकी । क्याल आया कि मूल समस्या तो तेल, नमक, लकड़ी, कपड़ा घुलाई, साबुन, सब्जी वगैरह ही है ।

समस्या एक पान और एक कप चाय की नहीं है ?

क्या हड़ताल इमीलिए की गई थी ।

हड़तालियों का मूल में क्या इतना ही सीमित लक्ष्य था ?

बात मूल में वही ‘चाटे’ की थी ।

सरकार ने जरा चाटा डाला कि हड़ताली ‘पावस’ गए ।

मुझे फिर गाय धानी है। गाय और मेरी मां !

सरकार वेतनमान मुधारने की सोचती है। नमय-नमय पर सुगारती भी है। मान लो (गच्छि मानने से कुछ होता-गोता नहीं) कि कल से न्यूनतम वेतन एक हजार रुपये हो जाए।

तो, फिर ?

क्या सहुल मुधार जाएंगे ?

पास पचास प्रतिशत से बढ़कर शत प्रतिशत हो जाएगा ?

क्या 'स्टेशन' रक जायेगा ?

कोई गारण्टी दे सकता है ?

कुछ भी नहीं, मुझसे मेरी गाय वाली बात भूलती नहीं। कितना ही खिलाओ खिलाओ, अच्छा वेतन दो 'घणकर'। पर ऐन वक्त पर 'चाटा' न डाला तो गाय तो दूध नहीं देगी। अच्छा परीक्षाफल रहा तो एक 'एडवान्स इंक्लीमेंट' दो। कोई रियायत, कोई सहूलियत तो होनी चाहिए। नामकरण कुछ भी हो, चाटा, इन्से-ण्टिव, एनकरेजमेण्ट, रिवाइंड, एवाइंड मेरिट सर्टिफिकेट। जब विष्णु के हजार नाम हो सकते हैं तो इसमें किसीको क्या आपत्ति हो सकती है !

मैं घर चलता हूँ। रास्ते में पनवाड़ी की दूकान। मेरा सबसे बड़ा जंकशन। मेरा वाटरिंग स्टेशन, नया 'घन लेने का स्टेशन। वैसे मैं अपनी ही स्टीम से चलता हूँ।

मुझसे पूछो तो मुझे पनवाड़ी से ज्यादा कोई 'मातवर' नजर नहीं आता। पनवाड़ी से ज्यादा मुझे कोई 'मातवर' नहीं समझता। ये वजाज और ये सर्राफ !

उनमें आत्मियता कहां ? मेरा तो यही अनुभव है। कभी भूल से सालों में कभी-कभार इनके यहां पहुंच भी गया तो उनकी निगाहों से ऐसा लगता है जैसे कि मैं कोई अच्छूत हूँ और वे घर्मसंकट में फंस गए हों।

खैर पनवाड़ी की आत्मियता ! अनुभव की चीज है।

अगर सार्वजनिक हड़ताल के दिन पनवाड़ी की दूकान बन्द नहीं होती तो मेरे हिसाबसे हड़ताल भी मुकम्मिल नहीं होती !

मोहन पनवाड़ी, मेरा दोस्त !

केवल पान बेचता है। लोग खाते हैं और थूक देते हैं। परन्तु मोहन को उससे

क्या ? उसने तो मकान बनवा लिया है । मानदार-गा ।

मैंने उसे एक रोड बहा कि वह धरने भवन का नाम रखे 'यूक भवन ।'

"यूक भवन !" उसने मेरी तरफ देगा सास भगदाड से । एक राग ऐंगल से ।

"ठीक ही तो है, जैसे यूक से बिपत्तता नहीं बागड भी, पर तेरी तो ईंटें भी यूक की, और बिपत्त भी गई । तेरा मकान सामुहिक यूक की परिणति है । देखो, जिन्होंने लोग यूके (पान खाकर) भोग जिनने क्यादा भोग यूके, तुम्हें बतना ही क्यादा पावदा होगा." मैंने एक छोटा-सा भाषण भाड दिया । "भाई लोगों की भीड़ में एक गजबन हूँ पड़े । हसी का पक्षारा जो सूटा कि मेरे कोट पर धमिट दिजान छोड़ गया ।"

"भाष क्या करते हो ? कौन-सी बाजरी बेचते हो ? कौरा यूक उछालते हो ।" मोहन ने नहने पर दहना मारा ।

"तुम्हें तो मास्टर होना चाहिए ।" मैंने झेंग मिटाते हुए कहा ।

"पर, मैं तो पनपाही ही ठीक हूँ । पर मेरा एक प्रतीजा है । बी. एम. टी. जी. पान । तीन गात से इन्जबारी में बेंटा है कि मास्टरी मिले । मैं तो कहता हूँ कि पान की दूबान कर से । परन्तु पनपाही बनने में खोर आता है, बेंठक चाहिए । पानीना आता है । मास्टरी में 'गुड-गुड' कर मरना मंजूर है । परन्तु स्वतन्त्र काम करने की प्रवृत्ति मारी गई । ये पड़े-लिये भोग क्या करेंगे ? मुझे तो समझ में नहीं आता," मोहन ने एक ज्ञापन-सा पेश कर दिया ।

"तू ठीक कहता है, मोहन ।" पान को मुह में दबाते हुए मैंने कहा और चला दिया ।

मोहन ने एक बात कही ।

यही बात तो शिक्षाशास्त्री कहते हैं ।

यही बात धगर विज्ञान भवन में कोई 'बिग-बिग' कहता तो धनधारी में मुनियों के साथ छप जाता । परन्तु मोहन पान बेचता है । सिर्फ पान । इसलिये ज्ञान की बात कैसे बेच सकता है ? लोग उसका पान खाकर यूक देते हैं, बस उसी तरह जगकी बात गुनकर भी धनमुनी कर देते हैं । ज्ञान भी तो 'मनमोहोराइज' दूबान पर बिक नहीं सकता । जाइनेस होना चाहिए रागद के रूप में ।

मैंने पान का पहला पीक भुका ।

"पान की दुकान क्या खोली है ?" धामने-आपसे सवाल किया । धार. के. नारायण तो बिना पान पाए हुए कुछ बिग भी नहीं सकते । उनके लिए तो अमेरिका में पान जाने हैं, हवाई जहाज में ।

फिर पटा-भिगा आदमी पनवाड़ी बन जाए तो धर्म की क्या बात है ?

पान का दुकान पीक भुका । पान की दुर्मी तो गतम । सोचा कि पनवाड़ी की ओर चले और एक पान और जमाएं ।

एवाउट टर्न किया ।

"क्यों कहां जा रहे हो ?" एक आवाज आई । उस आवाज को मैं बहुत जानता हूँ ।

"कहीं नहीं," मैं 'गेज यू वर' हो गया । धर के दरवाजे से लौटना मेरे बस की बात नहीं थी । पान का रहा-सहा गया काफूर ।

"बड़ी देर लगा दी ।"

"कहां रहे ? यह भी कोई वक्त है ?"

"हम सब लोग तंग आए, आपसे !"

अंग्रेजी में कोई शब्द, कहावत, जुमला वगैरह बार-बार प्रयोग में आए तो वह क्लिसे (Cliche) कहलाता है । क्लिसे महादोष है पर मुझे अपने घर में क्लिसे के सिवाय कुछ सुनना ही नहीं पड़ता । वही सवाल, वही टोन । साल के बारह महीनों, चौबीस पखवाड़े, वावन हफ्ते और एक दिन । रोज की यही रट मेरी धर्मपत्नी की, कर्मपत्नी की ।

सच पूछा जाए तो धर्मपत्नी शब्द की सार्थकता समझ में नहीं आई । धर्म की बात कौन-सी है ?

आज के महंगाई के जमाने में सबसे काँस्टली आइटम ही पत्नी है और ऊपर से ये 'इन्सीडेण्टल चार्ज' ।

धर्मभाई, धर्मवहन की बात तो समझ में आती है । परन्तु पत्नी में धर्म कहां घुस गया । सब कर्म ही कर्मों के बंधन । वह तो सारे कर्मों की जननी है ।

खैर, हिन्दी के पण्डिताऊपन से पिण्ड नहीं छूटा । उसे 'सिक्कूलर' बनने में लगेगी ।

मनासक्त भाव से सब कुछ देखता हूँ, सुनता हूँ। न मुझे याद है और न मेरी ओर से करियाद है।

“खाना ठण्डा हो जाएगा।”

मैं चुप।

“खाना खाना है कि नहीं?”

मैं फिर भी चुप।

“भूख है कि नहीं?”

“पहले एक चाय पिलाओ, फिर पता चलेगा कि भूख है या नहीं। फिर सोचूंगा कि खाऊ या नहीं।” मैंने मौन भंग किया।

“अजीब आदमी हो। यह भी पता नहीं कि भूख है कि नहीं, खाना खाना है कि नहीं,” यही आवाज जानी-पहचानी।

“धरे, तुम्हें कैसे समझाऊं कि ऐसी मन-स्थिति में शोषणपीयर भी हेमलेट के माध्यम में चिल्ला पड़ा था : टू बी और नॉट टू बी...”

मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी कि फिर एक और घमास।

“खाना खाना है कि नहीं। नहीं तो चौका उड़ाया जावे।”

“मैं पहले चाय पिऊंगा,” दुड़ता के स्वर में मैंने कहा।

मैंने हेमलेट कॉम्प्लेक्स तोड़ दिया। डैनमार्क के राजकुमार से बाजी मार गया। यह निश्चयारमक बुद्धि का ठोस प्रदर्शन था जिसके लिए भगवान कृष्ण को प्रार्थना से कितनी देर मायापच्ची करनी पड़ी थी। प्रार्थना से मैं एक ही बात में काम हूँ कि अपने ही धर में व्यूहरचना को तोड़ नहीं सकता।

“यह तो कप, बच्चे की-सी ज़िद ! यह भी कोई चाय का टाइम है ?”

मैंने कुछ नहीं कहा। कोई कमेंट नहीं।

चाय की प्याली खिचकर होठों के पास धा गई।

एक क्षिप।

गरमागरम चाय। तीरता हुआ घूमा। पता नहीं मेरे ही मुह की भाव थी या चाय की प्याली में कोई भाव थी। चाय की प्याली में सूफान गो बई बार देखा था। चाय में सचमुच कोई करिश्मा होता है ! सुपुन ज्ञानेन्द्रिया जाग उठती हैं। चाय की बाष्पमय तरंगों में देखियो नहरें। सम्प्रेषण की क्षमता।

पाय की प्याली तो चाई, पर किम कीमत पर ? एक सटिक्रिकेट के साथ ।

बच्चों की भी शासन ! एक 'आन्तरिक मूल्यांकन-मा' ।

क्या मैं अब भी बचता हूँ ?

यह जान तो मेरी मां करना करती थी ।

मैं रुटना था, बहता था, हूट करता था, बोलता नहीं था, पर जिद नहीं छोड़ता था ।

मेरा हूट, मेरी जिद पूरी करती थी मेरी मां ।

मां तो सर गई, पर मरी नहीं मेरी मां की 'मातृमूर्ति', मदर फिगर, मां का भूत, प्रेत, छाया । एक धदूप्य छाया । वह मातृमूर्ति प्रतिष्ठित हो गई है अन्वय । पत्नी में, पुत्री में ।

फिर मैं ? दिमाग में एक तरंग ।

...वही बच्चा जिसका धेवीशील टूटता नहीं ?

वही बच्चे की आदत ; जिद, हूट ।

वही 'बाण', वही कुबाण :

तो ? आदमी एक आदत बच्चा है ?

मैं तर्क के सहारे आगे बढ़ता हूँ ।

अचेतन में कोई परवर फेंकता है ।

आदमी आधा बच्चा और आधा जानवर पैदा होता है । औरत का काम है कि वह उसे परिष्कृत करे और पालतू बनाए ।

आदमी आधा बच्चा पैदा होता है !

आदमी आधा जानवर पैदा होता है !

औरत का काम ? वह क्या कर सकती है ?

क्या यह सम्भव नहीं कि वह आधे बच्चे से पूरा बच्चा बना दे ?

उसे कौन-सा गणित आता है ?

यह भी सम्भव है कि वह आधे जानवर से पूरा जानवर बना दे !

तो, फिर ? बड़ी खतरनाक स्थिति आ सकती है ?

चलो, आदमी पूरा बच्चा बन गया तब तक तो गनीमत है । इतना ही तो हुआ कि आठ और साठ साल के आदमी की 'मेंटल एज' में फर्क नहीं होगा । बाल सफेद होते जाएंगे, दांत टूटते जाएंगे, चदमे के नम्बर बढ़ते जाएंगे । मगर उसका

शिशु-कवच तो बरकरार रहेगा ।

शिशु-कवच में सुरक्षा होती है !

आखिरकार, मातृसत्ता-युग में भी तो आदमी का बच्चा रहा होगा । उसकी 'रिस' का पुराना अनुभव जी उठेगा । यह अनुभव तो उसके खून में है । अम्पस्त होने में क्या देर लगेगी ?

ज्यादा से ज्यादा कुछ लोग फलिया कस लेंगे । पर इसकी गुजाइश ज्यादा नहीं है । काच के मकान में रहने वाले दूसरों पर पत्थर नहीं फेंका करने !

पर मुदा न खास्ता, आघे जानवर से पूरा जानवर बन जायें तो... ?

तो फिर क्या होगा ?

एक जानवर, एक हैवान से क्या अपेक्षाएं ? कौन-सी रस्ती में बांध सकेंगे ?

रस्सिया तो वह तोड़ देगा । सब रिस्ते तरक ।

हैवान की नजरो में तो कोई हीवा ही नहीं ।

मा, बेटो, बहन, भाई, बेटा, बाप, बच्चे ! ये तो आदमी के रिस्ते हैं । ऊंट की मा और बीबी दो घोड़े ही होती हैं !

वह तो किमी को नहीं छोड़ेगा !

फिर तो जगह-जगह बंगला देश, बियतनाम...

उमकी उपलब्धि की मायाएँ बयान करेंगी—

खोपड़िया ! नर ककाल ! सामूहिक कब्रें ! सड़ती लार्श ! उड़ती हुई हूष्ट-पूष्ट चीलें !

क्या पाकिस्तान में औरतें मर गई थी ? अमरीकी मेमो का क्या हो गया था ?

क्या बहू उठनिया ही थी ?

माताएं मर गई थीं ? बीबियां नहीं थी ?

बहनें न थी ? बेटियां न थी ?

फिर ये इतने सारे मदान्य ऊंटों का टोता कैसे तंपार हुआ ?

आदम का बच्चा इतना उलील तो नहीं हो सकता कि हीवा की बेटो की हवा ही निकान दे ?

एक सिप । पूरे खोर से । बप खाली था । मैं हवा खींचकर ही रह गया ।

पास में सड़ी मेरी सड़की हंस पड़ी । मैं चौका ।

मैं घूम-फिरकर अपने घर आ गया ।

एक लघु यात्रा

कैसे रहे अगर मैं शुरु ही में साफ-साफ कह दूँ और माफ़ी भी मांग लूँ कि न तो मैं कोई बड़ा धुमकाइ ही हूँ और न कोई बड़ा आदमी ही हूँ जिसे इतनी दूर-दूर तक जाना पड़े जिससे वह भूगोल के विधाभियों को जलवायु, वनस्पति, जानवर, उपज आदि के बारे में कोई निमित्त जानकारी दे सके। न अक्षांश और देशान्तरों का ही इतना फर्क पड़ना है कि मुझे अपनी पड़ी की सुई घाने पीछे घुमाना पड़े। कपड़े उतारने या पहनने का सवाल ही पैदा नहीं होता। मोटे तौर पर यों ही समझ लो, गुण्ठी के इस पार या उन पार।

मुजानगढ़ की मया संज्ञा हो सकती है, गांव या कस्बा। मैं अभी तय नहीं कर पाया। जनसंख्या चालीस हजार से ऊपर है। भोपड़ियाँ आवाद हैं। सेठों की खाली हवेलियों में क्यूतर बड़ी तबियत से गुटरगूँ करते हैं। अगर संख्या ही सब कुछ हो तो खाली हवेलियों में रहने वाले क्यूतरों की संख्या भी चालीस हजार से कम नहीं होगी।

चलो, कस्बा या गांव की वहस में नहीं पड़ूंगा। आज दिल्ली भी वावजूद लाखों-करोड़ों लट्टुओं के, दुनिया का सबसे बड़ा गांव कहा जाता है और कलकत्ता सबसे बड़ी गन्दी वस्ती तो फिर इसे तो 'गांवड़ा' कहना भी गुनाह है।

आजादी के बाद क्या बड़ा, गांव या शहर? यहां भी वहस का खतरा है और वहस से बचो अपना तो मूल मंत्र है। बीच का रास्ता ही मिश्रित अर्थव्यवस्था की तरह इस देश की जीनियस के अनुकूल है। सीधा व सुरक्षित रास्ता तो यही होगा, अगर मैं कहूँ कि न शहर बड़ा, और न गांव। शवाघ रूप से कोई चीज़ बड़ी है तो वह है—गंदगी, भूख, बेकारी और बकवास।

मुजानगढ़ न शहर, न गांव। पीने का पानी नहीं है वहां की जमीन में। लोग आसमान की ओर ज्यादा देखते हैं वजाय जमीन के।

रेलवे स्टेशन के सामने कुछ दुकानें हैं जहां पूड़ियां व पकौड़े मिलते हैं जिनकी मुख्य विशेषता यह है कि वे बासी नहीं होते। तीन दिन पुरानी पूड़ियां भी ताजी ही रहती हैं। कोई नहीं कह सकता कि कड़ाई से कितने जन्म लिए हैं। द्विज से कम तो कोई होती ही नहीं। यहां की चाय भी एक विशेषता रखती है। चायका परिवार तो घासाम में रह जाता है। घासाम की उबली हुई चाय महा फिर उबलती है और उबलती ही जाती है। एक बार, दो बार क्रम चलता ही जाता है। सब कुछ होते हुए भी चाय में उबाल बाकी है, उफान बाकी है। इसके पहले 'बासी कढ़ी' में तो उफान कई बार देखा था।

मैं एक पर्सिस्वर गाड़ी पकड़ता हूं, अजमेर के लिए। वैसे तो इतनी बड़ा जहान है, कौन किसका मुंह पकड़े, कितने मुह उतनी ही बातें। मैं तो केवल एक बात जानता हूं कि अगर स्टीफेनसन आज जिन्दा होता और इस गाड़ी से यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होता तो उसकी धात्मा बड़ी सुखी हुई होती, केवल एक बात से कि उसका थोरिजिनल मोडल आज भी आउट ऑफ टेंट नहीं हुआ।

गाड़ी गति पकड़ती है और मैं लिङ्की के पास बैठे हुआ दोनों भालों से दो दिशाओं में देखता हूं। भन्दर भी और बाहर भी।

मुझे भी जैसे कोई उधार सलटाना है, बायरूम की ओर चल देता हूं, पर बायरूम खोला तो ऐसा लगा कि इसके बाहर एक नोटिस लग जाना चाहिए था 'ममनू'। मैं जिस शंका को लेकर गया था, बैठ गई और मैं अपनी शंका, छोटी या बड़ी, साय लेकर सौट धाया और अपनी जगह पर बैठ गया। चुपचाप।

मेरे सामने वाली सीट पर दो सज्जन बातों में मशगूल है। बात से बात चलती है और बात-बात में बहस शुरू हो जाती है। एक लेखा-जोखा शुरू होता है आज्ञाद हिन्दुस्तान की प्रगति का, बढ़ते हुए चरणों का। जनता, सरकार, समाज : सभी पर छीटाकसी, अनछुआ कोई नहीं रहता। "हमने क्या नहीं सीखा?" एक महाशय दलील देने लगे, "जहाँ गुई नहीं बनती थी वहाँ सुपरसोनिक जेट बनने लगे, नया हाऊ' था गया।"

'पर बायरूम का प्रयोग तो नहीं आया,' मैंने मन ही मन कहा और लिङ्की 'नो मे भ्रान्ते लगा।

मेरी भालों एक पुराने साइनबोर्ड से जा टकराती हैं।

कभी दो राज्यों की सीमा यहाँ मिलती थी। दो राज्य थे। दो राजाओं के

अमीन । दो तरफ के कानून । एक जमी जमीन पर जमीन का बन्दोबस्त एक जैसा न था ।

एक जैसी खेजड़िया, भाड़ियां, भोले-भाने लोग, पर राज्ज दो, राजा दो ।

एक जैसी प्रजा पर फिर भी दो, ठीक उसी तरह जैसा कि कमी होता था हिन्दू पानी, मुस्लिम पानी ।

“यह कैसे था, क्यों था ?” मैं अपने घन्टर जमे हुए इतिहासकार को मुला देता हूँ । प्राणों का टिकती है नरती हुई भेड़ों पर ।

कुछ भेड़ें चरना छोड़ देती हैं और देगने सगती हैं गाड़ी को । गाड़ी में नरी हुई भेड़-बकरियों को ।

नूगी घरती, 'खीना' घरती, घरती पर जैसे घास उगती ही नहीं ।

जब घरती पर घास नहीं उगती तो फिर इनकी जिल्द पर ऊन कैसे उगेगी? घास उगती है तो ऊन उगती है । घास से ऊन उगती है । इन हजामत बनाई हुई भेड़ों का क्या होगा ?

भेड़ का फर्ज है ऊन दे, वना भेड़ भूनी जाएगी । भेड़ कतरा भी जाती है । अगर कतरने की कुछ नहीं तो काटी जाती है । भेड़ को सामना करना पड़ता है कैंची का, चाकू का । यह भी हो सकता है, भेड़ सारी की सारी 'रोस्ट' कर दी जाए । मुझे अखबार की बात याद आती है 'दनादन गोलियां चली और पचास को भून दिया गया ।' ये भी कोई भेड़ें ही होंगी । शायद ऊन नहीं उतरी होगी, मुझपर उदासी उतर आई ।

भेड़ें पीछे रह जाती हैं । मुझे 'खेजड़ियां' भागती हुई नजर आती हैं । मैं गिनने लगता हूँ, खेजड़ियां गिनने में दिक्कत नहीं । गाड़ी की रफतार का मुझे श्रन्दाज नहीं, पर एक मिनट में तीस खेजड़ियां गिनता हूँ । आजादी के बाद इन खेजड़ियों से कोई जलवा नहीं उतरा । पर इन खेजड़ियों के गिनने से सार्थकता क्या ? नई खेजड़ियां कितनी पैदा हुईं, कौन बताये ? देश में जनसंख्या बढ़ी, इसका तो लेखा-जोखा है, पर ये खेजड़ियां किस अनुपात से बढ़ीं ! है कोई लेखा ? एक सवाल खड़ा होता है और खड़ा ही रहता है ।

जमीन खेजड़ी जनती है, औरत बच्चा जनती है । जमीन से ज्यादा औरत उर्वरा है ।

'अगर यही क्रम जारी रहा तो आदमी को जलाने के लिए लकड़ी नहीं

भित्तों की' एक सवाल मुख्य सवाल में धीरे जुड़ गया। मेरे अन्दर अर्थशास्त्री तिल-मिला उठा। एक गड़गड़ाहट, एक घबराहट। गाड़ी को ब्रेक लगा। मैं खेजड़ी से उतर आया।

'गरमागरम चाय', 'गरमागरम चाय' की आवाज सुनते ही मेरा अर्थशास्त्री तो छुप गया जैसे कोई डबल्यू टी, टीटी को देखकर। मैं चाय पीने लग गया। चाय में चेतना आई और आँखों में रोशनी आई, स्टेशन का बोर्ड पढ़ा। अचेतन में जैसे कोई भरोसा न हुआ, पड़ोसी से पूछ बैठा—कौन-सा स्टेशन है ?

"डोडवाना नामी स्टेशन। इस जगह का नमक खाते हो, नमक हराम तो नहीं होना चाहिए," पड़ोसी जैसे कोई बरसने की सोच रहा था।

"पर यहाँ के लोगों के चेहरे पर तो नमक है ही नहीं।" मैंने भी अपनी तरफ से गेंद लौटा दी।

छुक-छुक करके गाड़ी चल दी। डिब्बे में एक नया चेहरा आया जो बिना बोले बोलता था। बड़ी-बड़ी प्यार से पाली हुई भूछें। शायद ऐसी ही भूछें होती होंगी जिनमें शीबू ठहर जाया करता था।

'जरा हुरको' बड़े अदब से बोला। पर मैं कुछ नहीं समझा। वह शायद मेरे असमझ से भाप गया। तो वह अंग्रेजी में बोला।

आँखों में मेरी समझ में बात आ गई कि जिसे मैं सप्ताह कहता हूँ वह उसे हप्ताह कहता है। मैं छः के बाद सात गिनता हूँ और वह हात। सप्तापदी दोस्ती आरम्भियता में बदल गई। मेरा दोस्त मतलबान पूरा धूल-मिल गया। शुरू में तो मैं एक बार चौंका जब उसने कहा कि वह तो के के है।

भारतीय फौज का जवान जो 'शक या सवाल' को मिटाकर ही आर्डर देता है या लेता है, पूछ बैठा, 'जानते हो, के. के. क्या होता है ?

मुझे 'ना' कहने की नीयत ही नहीं आने दी और वह बोल उठा, "के. के. मतलब होना है कायमखानी।"

मैं मुस्करा उठा। जानी-बूझानी चीज जैसे किमी अनजाने रैपर में दे दी हो। उसने कहना जारी रखा, "के. के. सिपाही होता है, फकत सिपाही, जिसके खून में एक बात है—सड़ना बहादुरी से और बफादारी से, कुछ कीमतों के लिए, सच्चाई के लिए, वतन के लिए। इतिहास उठा सो, के. के. ने खून देने में कोई कंजूसी नहीं दिखाई और न भागकर अपना खून बचाया।"

में देखा कि उसकी मुठों लगी हुई है। ऐसा लग रहा था कि के. के. काम
'का मुगान्तर में चला आ रहा था। निम्नान प्रकृति हो रहा था। वह कुछ धीमा
हुआ और फिर पहना जारी रहा।

"के. के. हर मैदान में लड़ा और गुरु गुरु अपने दुश्मन से। हिन्दू हो या
मुस्लिम। उमूल के लिए के. के. मे. के. के. लड़ा है। बिना किसी किन्तक के।"

"कमान है।" मेरे मुँह में निकल गया।

"कमान की क्या बात है?" वह गम्भीर हो गया। "कीरव-पाण्डव कोई भाई
नहीं थे क्या? लड़ाई का कोई मुद्दा होता है, जान गंवाने के लिए बहाना होना
चाहिए। इन दो लड़ाइयों में के. के. घरों में कम चूड़ियाँ नहीं चटकी।"

उसने चार मीनार सिगरेट निकाली, मुझे भी 'प्रोफर किया, अपनी सिगरेट
मुलगाई। उसके कन्धे पर लगा हुआ पट्टीयुक्त सितारा बतला रहा था कि वह
एक नायब सूचेदार है। उसका रास बेलन व बेलन-शृंखला होती है, अंदाज
लगाया जा सकता है, पर वह मलखान एक इम्प्रेसन छोड़ गया। एक परमानेंट
इम्प्रेसन। डिगाना जंकशन आ गया। मुझे उतरना था और मलखान को आगे
जाना था। उसने बड़ी गर्मजोशी से हाथ मिलाया, फिर मिलने की आशा व्यक्त
की। मेरे मुँह से निकल गया 'अब रिवोयर'।

गाड़ी चल दी, उसकी वे मूछें कटोरी जैसी, उसका वह अन्दाज, वह पाक-
दिली। इन सबका नक्श मेरे दिल और दिमाग में सीमेण्ट की स्याही से लिख
दिया गया।

नागौर जिले के बैल नामी होते हैं। नागौरी बैल का मुकाबला नहीं, पवन-
वेग से उड़ता है। कहते हैं कि श्रीकृष्ण जब रुक्मणि को भगाकर ले गये थे, उस
समय रथ में जुते हुए बैल नागौरी नस्ल के ही थे।

परन्तु नागौरी आदमी ! लोग चाहे जो कुछ कहें परन्तु जिस घरती ने अमर-
सिंह दिया, एक मिस्त्री के लड़के के नाम से ही भारतीय संसद् में तूफान आ गया,
आखिर उस घरती के बारे में यों तो नहीं कहा जाना चाहिए।

नागौरी बैल हांकने वाले चौधरी का बेटा एक बहुत बड़ा रथ हांकने में जुता
हुआ है।

खैर, डिगाना देखने से एक बात तो समझ में आ जाती है, दिये तले अंधेरा।
डिगाना जंकशन—गन्दगी का ढेर। जंगल में गन्दगी।

ठीक स्टेशन के सामने भविष्यों की जूटन और वमन लिए हुए सड़ी-गली चीजें, सड़ती हुई नालियों के किनारे बहुत ही महंगी कीमत पर बिकती हैं और सरोदी जाती हैं।

पड़ोस में मकराना तानमहल बनने के बाद कोई बन्द तो नहीं हो गया, परन्तु डिगाना में पक्के पकान कहा ? कुम्हार फूटी हाडी में खाता है।

ग्रजमेर के लिए पहली बस सुबह चार बजे मिलती है। मैं लेटा, सोने की कोशिश करता रहा और इधर-उधर से भ्रमकी घाती भी तो कुत्तों ने भौंक-भौंक-कर मगा दी। भावावा गायें लड़ती हैं, कुत्ते लड़ते हैं और फिर भौंकने में 'कोम्पी-टीशन' करने लगते हैं। इस माहौल में रात गुजार देता हूँ परन्तु मेरे कहने का मतलब कतई नहीं कि घर पर मुझे कोई इमसे अच्छा माहौल मिलता है। वक्त का तकाजा हो तो कहना ही चाहिए कि दो और दो चार होते हैं।

सुबह चार बजे दो बसों एकसाथ ग्रजमेर के लिए रवाना होती हैं, एक जितना किरामा और एक जितना समय, मगर एक कच्चे रास्ते से और एक पक्के रास्ते से। मैं पक्के रास्ते से रवाना होता हूँ।

बस के इंजन का मॉडल कौन-से सन् का है या हो सकता है, अच्छे से अच्छा मिकेनिक नहीं बता सकता, मेरी तो बात ही क्या? 'मिक' का सन् तो वायुमण्डल में व्याप्त रासायनिक प्रक्रियाओं से ही चिसा होगा। स्कूल में भूगोल के पाठ में पढ़ाया जाता था कि हवा-पानी व सूर्य की किरणों से टूट-फूट होती रहती है। इस पुराने ज्ञान से एक बात तो समझने की मिली बर्ना में भी उन लोगों के साथ होता जिनका खुला चार्ज यह था कि सन् जान-बूझकर उड़ाया गया और साथ में माइलोमीटर भी। खैर, अपने को इन बातों से क्या लेना-देना है। मेरी निजी धारणा तो यह है कि आज के रोले-रूपे के युग में कानों की रोले-रूपे से बचावों बर्ना बानों के पर्दे फटने का डर रहना है।

इन बर्नों में कोई हजार तुकस निकाले, यह तो मानना ही पड़ेगा कि इन बसों में धामने-सामने बैठने वालों के दिल चाहे मिलें या न मिलें पर टांग से टांग तो टकरा ही जाती है। मँट और गद्दा जरूरी नहीं, खुली खिड़किया, उछलती-कूदती मोटर चलती हैं उस पक्की सड़क पर जिसने कोलतार के दर्शन नहीं किए।

बस में बैठे हुए लोग, देखने में पूरे परम्परावादी, वही साफा, वही पोशाक, औरतों की और मर्दों की, जो इस भूभाग के लोग सदियों से पहनते आए हैं।

गान्गोत्रि-भूषोत्र, धर्मशास्त्र की महाराष्ट्रियों का इन्हें पता न हो पर वेने पूरे जाग-भक्त गात्र-व्यवहारे के पूरे हिमाश्रयी, समाजवाद के पूरे समर्थक। दिवकत तो उन्हें कम समय होती है जब कोई पूरे दि—समाजवाद कदां तक तो था गया है और विद्वाना सामना सभी खीर तप करना है ?

मैं उन लोगों की बहम मुनने में मग गया। आज्ञाशी की सबसे बड़ी देन यह है कि आज बहम सब जगह पानवी है गाड़ी में, बग में। मंसद् और विधानसभाओं का डेना नहीं रहा। गीर, पन्तों-पन्तों बहस विचारों तक पड़च गई।

“तारे तो वोट गोन दे, दिन में तारे दिना दे।” मेरा पछीसी जिरह कर रहा था।

“तो अब तो गरीबी को भागना ही पड़ेगा।” मैंने भी इस ‘चालू डिबेटिंग मन्व’ की सदस्यता के लिए आवेदन किया।

“दिगो जी, गरीबी तो भगाएगा भगवान, या भागेगी काम से, पर हमारे पास तो ‘भोट’ थे, जो हमने दे दिए और गुलकर दिए, ‘वाजन्ता डोलां,’ अब चाहे गरीबी भागे या गरीब” “दाशनिगता के पुट के साथ मुझे जवाब मिला। अजनबी को जल्दी ही कौन अपनी ‘पांत’ में मिलाता है, मैं महसूस करने लगा।

बस की एक और तारीफ। जहां चाहे ठहर जाती है, ठहराई भी जा सकती है। कोई चार्ज या सरचार्ज नहीं देना पड़ता।

एक बाबा आ गया। हाथ में एक डिब्बा था जैसे कि अल्प वचत योजना विभाग ने उपहार में दिया हो। बाबा ने डिब्बे को खुन-खुनाते हुए श्रद्धालु भक्तों के सामने पेश किया और सभी भक्तों ने श्रद्धानुसार हाथ का उत्तरदस-दस पैसे, पच्चीस पैसे। मोटर में बैठे सभी समाजवादी वोटों ने जहां खुलकर वोट दिए, वहां बाबे को भी खुलकर तवियत से पैसे दिए। बाबे को तो मैं ही एकमात्र मनहूस नजर आया। उन्होंने मेरे सामने से डिब्बा हटाने के पहले मेरी ओर घूरकर देखा। मैं डरा भी बहुत, मन ही मन पर, चलो अच्छा हुआ, उन्होंने मुझे कोई शाप नहीं दिया।

गाड़ी एक जगह खड़ी हो गई। मुसाफिर न कोई चढ़ रहा था और न उतर। ड्राइवर सीट पर न था। मुझमें उत्सुकता जागी, बाहर देखा तो देखा हूँ “वही बाबा, पास में ड्राइवर बैठा था और पास में दो प्रोफेशनल चेले : विलम चल रही है, शायद चरस की होगी क्योंकि ड्राइवर बड़ी तन्मयता व पूरी ताकत

के साथ खींच रहा था।

साधारण चित्तम से इतनी सरमारी कौन करता है !

समाजवादी वोटर भ्रन्दर ही बँठे हुए थे, ड्राइवर की इन्तजारी में। बड़े ही दार्शनिक भाव से। उसका काम था पैसा देना, सो दे दिए। भ्रम उसका प्रयोग घरस में हो या किसीको चना खिलाने में।

“भागलो जाओ, उसका राम जाओ।”

समाजवादी वोटर सोचता नहीं।

बस चलती है, बड़े ही रोमांटिक तरीके से। समय और गति का बर्णन नहीं। बस की जनसख्या बढ़ती मरू होती है दुगुनी, तिगुनी। पूरी आजादी है, भ्रन्दर बँटो, ऊपर बँटो, जहाँ जगह मिले वहाँ बँटो। बस मरचागब भर जाती है। बस में चाहे कोई हजार सामियां निकाले। (सामियां किममें नहीं होतीं !) पर कोई दम घुटकर नहीं भर सकता। इस पीप के महीने में विहकियां गुनी हैं, ताजा हवा और रोसनी भानी है। किमीको न्यूमोनिया हो जाए, वह तो भगने की किस्मत है। बस में ‘भारत माता’ की सूक्ष्म प्रतिहति नजर भानी है।

धन्य है वह ड्राइवर जो दमे खींचता है। पुराना इजन चलता है, तेल से या ‘बजरंग बली की जय’ में।

हमारा कारवा पुष्कर पहुँचता है। पुष्कर तीर्थराज, सब तीर्थों का गुरु। ब्रह्मा का एकमात्र मंदिर वहाँ। उनकी स्त्री हुई धर्मपत्नी का एक और मंदिर। पति-पत्नी के व्यक्तिगत मामले को सार्वजनिक रूप से नहीं देना चाहिए था, परन्तु बात ही कुछ ऐसी थी कि पर्दा नहीं डाला जा सकता था।

ब्रह्मा भी बहक गए। बहके भी ऐसे कि ब्रह्मा का ब्रह्म टिंग गया। ‘दूह’ के चक्कर में घा गए। ‘दूह’ किमका रिटना माने? प्रजापति का यह हान, पत्नी ही प्रजा पर पिल पड़े। इसी कारण ब्रह्मानी मात्र भी स्त्री हुई है, मुँह पेंरे हुए। पर भजनगण का काम नहीं कि ये ब्रह्मा के बारे में कुछ बहें। ब्रह्मा ब्रह्मा ही है बुराई के बाबजूद भी।

ब्रह्मा के बेटे पुष्कर में बहृत हैं। पुष्कर पत्नों का ‘रिपट’। पुष्कर में कोई था कि पण्डे पीछे पड़ जाते हैं। एक पण्डा मेरे भी पीछे पड़ गया थापर उमने किसी भ्रमचार से अपना सन्निहन देता न हो। पण्डा मुझे पण्डेकर घाट पर ले गया। ताताब तो मृत गया था, पर सत्कार ने ‘टोडिन’ सदा दी। भक्त

लोग मल के नीचे गहाने में ही पुण्य मानने लगे ।

तीर्थराज पुष्कर में बहती है जब धोर कर्मपाश । पुष्कर में पण्डे झपटते हैं ।
पाट पर पण्डे और तालाब में पड़ियाल । किसी जमाने में श्रमानु भक्त पण्डों से
ठरकर पड़ियाल की शरण में जाने में पुण्य मानते थे ।

अब पड़ियाल तो मरुभार में पत्थर में फिक्क्या दिग, पर पण्डे मौजूद हैं
आज भी ।

बस अजमेर पट्टनती है अजयपाल का अजमेर, पृथ्वीराज का ननिहाल, जय-
चन्द का ननिहाल । छद्म दिन के भीपड़े का अजमेर । अकबर तीन दिन में जंठनी
पर चढ़कर श्रामने से अजमेर आया था । अजमेर अजमेर है ।

अजमेर शरीफ ।

शरीफ और शरीफगढ़ों की मर्दुमशुमारी होना बाकी है ।

सिन्धियों के आने के बाद अजमेर शरीफ पहले से ज्यादा शरीफ हो गया है ।

अजमेर शरीफ ।

भीड़ अंधी होती है

एक पढ़े-लिखे काजी ने पतवा दिया 'भीड़ अंधी होती है'। बाकायदाओं के जरिये पतवे की गूँज गव के बानों में गूँज गई। मीने भी सुना।

एक दिन मैं भी भीड़ में फँस गया तो मुझे काजी की बात याद आई। अंधे की सफाई बढ़ी भयंकर होती है, जो भी चीख हाथ धा गई, बग उसकी तरफ नहीं होती। पकड़ में आनी चाहिए। हाथ हों या टांग हों। मैं भीड़ से चपखाने भग गया। पर भीड़ में जो फँस गया तो उसे भीड़ में ही रहना चाहिए। भीड़ में अन्दर आगला नहीं चाहिए। भागने वाले को भीड़ मार देती है।

भीड़ के अन्दर से ही मैं भीड़ को देखने लगा। मुझे दिखाई दिए तागे बाने, रिशते बाने, साहबिल बाने, ठेले बाने, सोमचे बाने, घाट बंगने बाने, तेली, तपोनी, हम्माल, हज्जाम। ये सब भिगते हैं तो भीड़ बन जाती है।

मुझे काजी जी का पतवा याद आता है, काजी जी याद आते हैं। काजी जी दुबले-मलले, धरमे बाने। काजी जी ने क्या सोचकर पतवा दिया होगा? मैं भीड़ के साथ चलता भी जाता हूँ और सोचता भी। क्या काजी भी मन्त्र हो सकते हैं, मैं सोचने लगता हूँ। 'अगर भीड़ अंधी होती है तो तागे बाने भी अंधे होने चाहिए। ये लोग फिर धर कैसे पच सकते हैं? हर तागे बाना अंधे छोड़े य तागे के साथ साम को पर पहुँचता है, लही-सामत, बाबजूद सडक पर बने हुए गड्डों के ठपरा खुले हुए गटरों के। मगरपाकिता की मेहरबानियों का मुजमान ये सडके और गटर करते हैं। यह अंधा तागे बाना कभी इन गटरों में नहीं गिरता। गंदे हृदयों पचना तो मात्र मुमकिन नहीं, पर मय तागे और छोटे के मुने हुए 'मेन होनो' में तो पूरा ही सकता है। पर ऐसा होता नहीं। सभी लोग धरने रैन बगेरों में पहुँच जाते हैं। फिर ये अंधे कैसे? अगर ये अंधे नहीं तो भीड़ अंधी कौन?

काजी जी ने क्या सोचकर पतवा दिया था? मैं सोचने की प्रक्रिया कर ले रहा हूँ। मेरा दिमाग हाँफने लग जाता है और दर पचने लगता है।

रकने का बहाना खोजता हूँ, एक दही-बढ़े वाले के गोमने के पास गया हूँ। एक कोट दही-बढ़े का आदेश दिया हूँ। गोमने के आसपास एक कू। मगर का आदेश देगा और लौटता नहीं। ही माला है कि दही-बढ़े बेचने वाले के यहाँ पर दही-बढ़े का फार्म नहीं होता। सभी आदम एक जैसे होते हैं। लोग अपनी जूटन की बोटें एक बाहरी में गए हैं। मैंने लिए और चल देते हैं।

"बाबू साहब, आपने मेरी मिरची तो मरवा दी," गोमने वाला अपने एक आहक के बोला, "दूधने दीजिए।"

"नहीं तो," आहक बोला।

"नहीं कैसे? मैंने कोट चरमा भोड़े ही लगा रखा है। मुझे दिखाई देता है, वहाँ तो इस भीड़ में जो मिरची में दही-बढ़ों में जानता हूँ, कब का कोई भेरी आँतों में ही टाल जाता," उसने मेरे दही-बढ़ों पर मिरची बुराते हुए कहा।

मैंने उसकी आँतों में देखा, अपना चरमा भी हाथ लगाकर देखा।

"माफ करना, मैं आपको नहीं कह रहा हूँ," उसने किसी आहक को लौटाने के लिए छीनकर गिनते हुए कहा।

"ले भइया, अपने पैसे और डालता जा मिरची दही-बढ़ों पर भी, और अंधी भीड़ पर भी," मैंने एक रुपये का नोट बढ़ाते हुए कहा।

"भीड़ की आँतों में मिरची पाउडर क्यों? इस महंगे भाव की फिर तो, धूल ही डाली जानी चाहिए। पर यह भीड़ अंधी नहीं है बाबू साहब," वह जोर से हँसा और फिर कहना जारी रखा, "अगर यह भीड़ अंधी होती तो यह ठेले वाले अपने ठेले भिड़ा देते, रिक्शे वाले रिक्शे टकरा देते, भीड़ अपनी राह चल रही है, भीड़ अंधी नहीं है और न किसीसे मिचं डलवाती है, परन्तु यह भीड़ वेबस जरूर हो जाती है जब कोई हवाई जहाज से मिरची का पाउडर छिड़कवा दे, चलती सड़क पर विजली का करण्ट लगवा दे, उस समय बेचारी भीड़ क्या करे सिवाय आँस मलने के। इसी बीच जब इसकी जेब कट जाती है तो भीड़ चिल्लाती है, 'चोर, चोर'।"

"सारी भीड़ की एकसाथ जेब कैसे कट जाती है?" मैं पूछ बैठा।

"यह सीधी-सी बात भी आप नहीं समझे! यह ऐसे कि रात चीनी का भाव था पांच रुपये किलो और दुकानें खुलीं तो हो गया छह रुपये किलो। यह जेब किसकी कटी? भीड़ की ही कटी। भीड़ रोती है, चिल्लाती है, चोर चोर। चोर को पकड़ो, तो प्रत्युत्तर में ऐलान होता है—'भीड़ अंधी है, इसे गोलियाँ खिला-

कर धुप करो," गोलिया खाकर वह सो जाती है, रोता-चिल्लाता बंद। कुछ धर्मों का फिर तागे चलने लगते हैं, ठंजे चलने लगते हैं," उसने अपनी भगुलियां पानी में डुबाईं और कंधे पर रखे कपड़े से पोछ लिया।

"फिर ?" मैंने उत्सुकता जाहिर की।

"मुझे अब इन साहबों को सलटाने दो, वर्गा सोमबा ठंडा हो जाएगा। धापने तो मुझे नेता समझ लिया, जो कि बातें बेचता है। मैं दही-बड़े बेचता हूँ, माफ करना, बानू साहब, धापके वैसे धा गए," कड़ते हुए उसने दोनों हाथ जोड़ लिए, "भापके पास काफी टाइम दिखाई देना है, किसी तेजा के पास जाए।"

मेरी दिमागी घुटन खतम। मुझे लगा कि दही-बड़े वाला दही-बड़े के प्रतावा कोई अच्छी चीज बेच रहा है। मगर उसकी चर्चा नहीं होती। न धावासावाणी पर, न मखबारी में। मैं काजी जी बानी बात पर सोचने लगता हूँ।

काजी जी के फतवे का क्या अर्थ हुआ ?

काजी जी दुबले क्यों हैं, समझ में आता है। गहर का अदमा है।

मगर काजी जी ने यह फतवा क्यों दिया ?

क्या फतवा किसी मजबूरी या लाजब में दिया गया है ? क्या कोई कुछ कह सकता है ? पर एक बात जरूर है। काजी जी अदमा क्यों लगाने हैं ?

क्या वे बिना अदमे के अपने पैरों के आसपास की चीजें भी नहीं देख सकते ? काजी जी अदमे मामूम देते हैं। उन्हें बिना अदमे के कुछ नहीं दिखाई देता। जब तो उन्हें फतवे देने का काम बंद कर देना चाहिए। अदमे को दुनिया ही घंघी दिनाई देती है। काजी जी अदमे तो भीड़ ही घंघी।

परमखे की बात तो यह है कि फतवे देते हैं वे, जिन्हें दिखाई नहीं देता, जो हर तीसरे महीने अपने अदमे के नम्बर और रंग बदलते हैं। टोपहर के समय सद्दुजनाकर रखते हैं। फतवे देते हैं वे, जो डाक रूम में ही फोटो खींचते हैं, फोटो घोंते हैं, रिटबिग करते हैं, फोटोपेरिक ट्रिप करते हैं एक फोटो की घड़ पर किसी घट का निर ट्रासप्टाट कर देते हैं। वे ही सारा डाक रूम से ही ऐतान करते रहते हैं कि भीड़ घंघी होती है।

इस बार अगर काजी जी मिन गए तो उन्हें पसोडरर दही-बड़े बाते के पास में जाऊंगा कि अपना फतवा उरा हमरी मुना और समझा, नहीं तो हमरी बात मुन और समझ। आसिर भीड़ में तो यह रहता है। अगर वह नहीं मानेगा तो अपना उतरवा मुगा और बहंगा कि काजिनों की जरूरत नहीं है गहर में, भाव जा।

बेगाराम की चिट्ठी प्रोफेसर के नाम

रूपनाथ की दागी
गोगा नवमी

प्रिय प्रोफेसर साहब,

आपकी चिट्ठी मिली। पढ़कर बड़ी खुशी हुई। तबियत हुई कि आपको छेर सारे धन्यवाद दे जानूँ। धन्यवाद देना जैसे कभी परम्परा का निर्वाह ही रहा होगा परन्तु आज की तारीख में सही हकीकत है। आप ही बताइए इस कमरतोड़ महंगारी के जमाने में कोई किसीको नाग चाहे तो भी क्या दे सकता है सिवाय धन्यवाद के। बहुत करे तो अपना 'पोत'।

मैं आपको चिट्ठी का जवाब उसी वक्त देना चाहता था। भाव तो मेरे दिल में बहुत थे, परन्तु भाषा न थी। दिल की बात कागज पर कैसे उतारूँ, मेरी सबसे बड़ी दिक्कत थी। भावों को रखने का कोई पात्र या माध्यम तो होना ही चाहिए, परन्तु ऐसी कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी कि बात का ढब बैठ जाए। इस आड़े वक्त में भगवान ने मेरी बात सुन ली। मुझे एक मनचाहा आदमी मिल गया। सुनते हैं कि शहर में इस प्रकार की दिक्कत होती नहीं। पढ़ा-लिखा आदमी किराये पर मिल जाता है। देखा जाए तो शहर की तो बात ही नहीं करनी चाहिए; वहाँ पर तो हर चीज किराये पर मिल जाती है। रोने के लिए लोग किराये पर मिलते हैं तो गीत गाने के लिए भी पैसा चाहिए। पैसा है तो मजमा लगवा लो, हंगामा करवा लो, अभिनंदन करवा लो। पर गांव में ऐसी सहूलियतें कहाँ? इसी बात में ही तो गांव शहर से पिछड़े हुए हैं।

खैर, किसी अच्छे ग्रह का अन्तर या प्रत्यन्तर ही समझिए कि मुझे एक व्यक्ति मिल गया जो मेरे साथ लिखारा (लेखक, लिपिक) बनकर कार्य करेगा। जब एक लंगड़ा और एक अन्धा मिल-जुलकर कार्य कर सकते हैं तो हमें क्या दिक्कत

हो सकती है। मैं बोलूंगा और वह लिसेगा। भाव मेरे और भाषा उसकी।

शहर के बारे में तो अजीब-अजीब बातें हैं। सुनते हैं कि शहर में किसी चीज को अचरित होती है तो अखबार में छपवा देते हैं। अखबार में छपवा दो कि अंग्रेजी पढ़ा हुआ, या अरबी पढ़ा हुआ व्यक्ति चाहिए, भाषण लिखने वाला व्यक्ति चाहिए, फिर देखो, 'लेण की लेण' लग जाती है। तबियत मुताबिक छांट लो। स्टेनो, सेक्रेटरी। फिर तबियत से भाषण भाड़ो, लेस छपवाओ। आपकी असलियत कभी सुलेगी भी नहीं। एम. ए. पास व्यक्ति पीकदान उठाने को मिल सकते हैं। शहर में तो मजे ही मजे हैं, बस धातें इतनी-सी कि गाठ को अकल हो और जेब में पैसे।

गांव के भ्रामरी का रोग या उसकी विशेषता यह है कि वह सपाट होता है। अभिनय करता नहीं आता। जो बात दिल में है, वही जवान पर, वही चेहरे पर। अगर नाराज है तो नाराजगी छूपा नहीं सकता। वह हर स्थिति में जीता है। हर स्थिति में अपने-आपको धोलता है जबकि शहरी भ्रामरी ऐसी स्थितियों में केवल भाव अभिनय करता है। हाल ही में, मैंने ताड़ा-ताड़ा सिनेमा देखा। पर्दे पर एक भूमिका देखी, मिखारी की। हू-बहू मिखारी जैसा। लोगों ने दाद दी। कहते हैं कि उस भ्रामरी को इनाम मिला है, मेरे पास में बैठे हुए दो लड़के बात कर रहे थे। परन्तु बाहर आकर सड़क पर एक मिखारी देखा। सोलह भ्राने मिखारी, जो मिखारी का जीवन जी रहा था, परन्तु कोई एक पैसा भी भोल में नहीं दे रहा था। मैं सोचने लगा "मिखारी का अभिनय करे तो इनाम, खासा अच्छा इनाम, मगर जो जीवन अिए उसको एक पैसा भी भोल में न मिले, बड़ी ही विचित्र बात है।" मुझे शहरी और देहाती जीवन का फर्क समझ में आ गया। एक शहरी व्यक्ति किसी अजनबी से मिलकर अभिवादन के बाद कहेगा—“आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई,” परन्तु अगर कोई पूछ ले कि खुशी किस बात की, तो उसका जवाब होगा, “यह तो यो ही होता है और वह यों ही होता आया है।” पर एक देहाती ऐसा नहीं कर सकता। उसको न तो अभिनय करना आता है और न दोहरी मान्यताओं के साथ दोहरी जिन्दगी जीना। वह तो सीधा और सपाट है, छूपाने को न तो कुछ है और न उसकी क्या। एक जैसा, ऊपर से भी और अन्दर से भी।

साथद यही वजह रही होगी कि नगर का रहने वाला नागर कहलाया और गांव वाला गवार। नागर का भाग चलकर अर्थ हो गया चतुर, समाना, और गवार का अर्थ हो गया फूहड़, जिसे बात बनानी नहीं आती, बात में बतरस

पोनना नहीं था। नागर लोग ही नहीं माने में नागरिक हैं और नागरिक के के साथ निपटरी हुई है नागरिकता।

उस दिन आपने इस वाक्य का अर्थ समझा था। बाद में अफेने में सारी बात की जगहों की तो एक नाम घटक गई और नहीं उतरी।

नगर के लोग ही मनुष्यः नागरिक हैं। नागरिक शब्द आज चाहे स्थापित हो गया हो परन्तु जिस समय इस शब्द का प्रचलन हुआ, उस समय नगर के लोगों की ही सब कुछ बननी होगी। आधुनिक पड़े-निगे से ये ही लोग और इसी वजह से नगर को ही केन्द्र बिन्दु मानकर ही सामाजिक विद्या होगी। गांव की शायद कोई 'से' न थी। यह भी सम्भव है कि उन्हें मत का अधिकार भी न रहा हो।

आज जब हम हिन्दुस्तान के नागरिकों की बात करते हैं तो अचेतन में कोई अदृश्य व्यक्ति पूछने लगता है।

क्या सारा हिन्दुस्तान कोई एक बहुत बड़ा नगर या नगरों का समूह है जो आप नागरिकों की बात करते हैं? आठ लाख गांव हैं इस देश में, करोड़ों लोग वहां रहते हैं। क्या सम्बोधन के लिए आपकी भाषा में नागरिक के अलावा और कोई शब्द नहीं था। बात केवल शब्द की नहीं, मनोवृत्ति की है। आप देखिए विभाजन के बाद इस देश में लाखों लोग आए, हम उन्हें शरणार्थी कहने लगे, परन्तु शब्द की गन्ध सरकार और जनता को अस्वस्ते लगी और उन्होंने सम्बोधन के लिए नया शब्द चुना—विस्थापित। सब ने कहा—यह ठीक है और अंग्रेजी में भी उन्हें 'रिफ्यूजी' के बजाय दूसरे नाम से पुकारने लगे। यह तो हमारे सामने हुआ। इसी प्रकार नागरिक में नगर की गन्ध आती है, पर बोले कौन? नगर को आपत्ति नहीं, गांव समझा नहीं। उनमें इतनी समझ कहां कि उन्हें नागरिक शब्द में गांव की उपेक्षा नगर आवे। ध्वनि तो यह भी निकलती है कि गांव वाले घटिया स्तर के लोग हैं।

आपने उस समय यह तर्क दिया था कि बराबर मत का अधिकार मेरी शंका को निर्मूल कर देता है। पर इससे आगे न तो बात चलती है और न तर्क। मान लीजिए कि कल गाय, भैंस बगैरह को भी मताधिकार दे दिया जाए और उनके खुर के निशान लगाकर वोट डालने का कानून बन जाए तो? आज तो हम चुनावों में 'सिम्बल' के रूप में गाय, घोड़ा, ऊट बगैरह को याद करते हैं। मैंने चुनावों के दिनों देखा है। लोग नारा लगाते हैं, "हाथी सबका साथी। हाथी को वोट दो,

घोड़े को बोट दो।" कोई कहता है कि घोड़ा जीतेगा उधर ऊंट के हृदय उनकी जीत के बारे में बताते हैं। जब हम घोड़े को बोट देते हैं, गाय को बोट देते हैं तो फिर घोड़ा बोट क्यों न दे ? ऊंट बोट क्यों न दे ? ऊंट चुनाव लड़ सकता है तो ऊंट को बोट का अधिकार क्यों न हो। सामय दुनिया के सबसे बड़े प्रजातंत्र देश में ही इस प्रकार के कान्तिकारी कदम की पहल हो सकती है। इस धनोन्मी सूत्र के लिए, सारी दुनिया इस देश का लोहा मानने लगे। मान लो, यह सब कुछ मभव हो जाए तो क्या हम मान लें कि गाय, भैंस, ऊंट को पूर्ण अधिकार मिल गए ? अगर नहीं, तो फिर करोड़ों अंगूठाछाप लोगों के बारे में क्या कहेंगे जो पाच साल में एक बार गाय, भैंस, ऊंट को ही 'बोट' देते हैं, आदमी को नहीं।"

प्रोफेसर साहब, अपनी जाय उचाहने से अपने को ही तर्क धाती है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि पाच साल में एक बार किसी गाय, भैंस, ऊंट, घोड़े की पूछ पर टप्पा लगाने वाले इन करोड़ों अंगूठाछाप लोगों ने कभी यह क्यों नहीं सोचा— "क्या हिन्दुस्तान एक नगर है जो हम इसके नागरिक हुए। क्या धीर शब्द नहीं था जिससे इस देश के निवासियों को सम्बोधित किया जा सकता था ? बात शब्द की नहीं है, बात है मनोवृत्ति की। बात है नागरिकों के सोचने के तरीके की।

सुनते हैं कि आज स्कूलों में नागरिकता की शिक्षा दी जाती है, पर नागरिकता में क्या सिखाते होंगे सिवाय इसके कि नागरिक व्यक्ति इस प्रकार बँठता है, इस प्रकार बोलता है। उसके सोचने का तरीका ऐसा होता है। ये सारी चीजें मिल-कर नागरिकता बन जाती हैं। आप लोगों में उसे सामाजिक मान्यता दे दी। उधर गाव के लोग सरुया में जाहे बसादा ही रहे हो, पर उनकी बली नहीं। उनकी जीवन-मदति, रीत-रिवाज बगैरह गवारू ही रहे। मोटे-तौर पर, इतिहास के दौर में दयदधा रहा शहर का धीर गाव घिसटते रहे पीछे-पीछे। व्यवस्थाएं दी नागरिकों ने, गवारो ने उसे 'सिर मत्ये' रखा। आज तक का इतिहास उठा लो। आप लोगों के ही नियम। नियामक व निर्णायक रहे आप लोग। आप ही बकील। आपने ही साहित्य रचा, कानून बनाए। नागरिकों को स्तुत्य प्रस्तुत किया धीर हमें उपहास के पात्र। हमारी कीमत पर हंसें। पर मजे की बात तो यह कि हम अपने ही मजाक पर हंसते रहे यदि कभी-कभार हमारी महानुभूति में दो शब्द लिख दिए या कह दिए तो हम तहेदिल से शुक्रिया बरते रहे। हमने कभी विरोध नहीं किया धीर न किसी प्रकार का 'प्रोटेस्ट मार्च'।

घर आरामे गलाय है, प्रोविडर गाहन । घात तक तो गंवार लोगों के भेजे में यह बात नहीं आई कि उनके गांव टूटी होनी रही है, परन्तु जिस दिन यह बात समझ धा गई, तब क्या होगा ? जिस दिन भी यह बात अच्छी तरह से समझ में ला गई तो गारे भगवत भूमा दिग् जाणमें और नया भगदा भूक होगा ।

गांव यनाम शहर, गंवार यनाम नागर ।

ज्यों ही भगदा भूक हुआ, दो 'पाने' तैयार । हम सनकार देकर कहेंगे कि तो जाए कवड्डी—मीथी कवड्डी, दो बगों के बीच ।

घात सोन लो, कवड्डी में गांव किसका टूटेगा ? नागर कवड्डी के लिए तैयार नहीं हुआ तो हम शहर का घेरा खान देंगे । गांव और शहर के बीच पहिले ही शेर में गार्ड नहीं तो कम में कम बाढ़ तो जरूर गढ़ी कर देंगे । गांव में शहर का कोई पिछलग्गु होगा तो उसको बाढ़ के उस पार फेंक देंगे । गांव और शहर के बीच हुकमत-पानी बंद । न किसी प्रकार का लेनदेन न किसी तरह का सम्पर्क । फिर देगना है इन नागरों को, इन शहरों को । हम लंग तो जी लेंगे । गांव तो भूगा-प्यागा, आधा नंगा रहकर भी जी लेगा, परन्तु शहर मर जाएगा । शहर को मरते देर भी नहीं लगेगी । घापने महसूस किया या नहीं, एक बात और है । शहर मूलतः एक चारु जानवर है जो चरना ही जानता है, सूब खाता है और खाता ही जाता है । सब कुछ खा जाता है—चीनी, दूध, कपड़ा, विजली । और हमारे लिए कुछ नहीं छोड़ता । हमारा कोटा कट जाता है ।

शहर एक 'कल्च्यूरिंग सोसाइटी' होने के साथ-साथ अपने स्वार्थ के सिवाय कुछ सोचता नहीं । उसकी भांगे सदैव यही रहती हैं कि अच्छी-अच्छी सड़कें वहाँ हों, दिन में विजली के लट्टू जलें । अच्छे-अच्छे कालेज हों, अस्पताल हों, नवीन-तम मुख, सुविधा हों, यहाँ तक भी ठीक है । पर ये सब चीजें गांव की कीमत पर हों, कैसे गवारा हो सकता है ? गांव उजड़े और शहर जिंदा रहे, वर्दास्त करने लायक चीज नहीं है । कोई बताये तो सही, शहर क्या होता है सिवाय बीमारियों, गनीरिया, घुआं, घुटन और अशुद्ध वायु के ।

नागर वर्ग हकीकत में एक 'खाऊ पीर' समाज है । हमने भूले रहकर इस वर्ग को खिलाया, पर इसके एवज में हमें क्या मिला, यह बात हम जानते हैं । एक बोझ । गोरे आदमी का बोझ काला आदमी ढोता रहा और नागर का बोझ एक गंवार । पर अब हम यह मलवा और अधिक नहीं ढो सकते । पानी सिर के

ऊपर से बहने लग गया है। वे 'एलीट' (नागर) बने रहे और हम गंवार। आप उम्र स्थिति का अंदाज लगाइए : कानून बनाए वे, नियामक और निर्णायक वे, प्रपील करें तो उनमें ही। हमारा फर्ज तो यही रहा कि हम उनका आदेश मानते रहें, वे कहें जहाँ भगूठा लगा दें। जैसा हुक्म हुआ, हाथ खड़े कर दिए, सिर हिला दिया, 'हां' कह दी, 'ना' कह दी। इशारा हुआ तालिया बजा दी। इस तरह से शहर के जेरे-शाये गांव जिया, एक जलालत की जिन्दगी। शहर सुरमा की तरह बढ़ते रहे और गांव उगका उपनगर बनने में ही अपना प्रहोभाग्य समझता रहा। इसके लिए कुर्बानी दो अपनी स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र चत्ता की। शहर बढ़ता रहा, गांव सिक्कता रहा।

प्रोफेसर साहब, भव हकीकत बेनकाब है। भव यह स्थिति न तो सहा है और न उमूलन सही जानी चाहिए। फोटा नशतर मागता है नशतर तो लगना ही चाहिए। शरीर को खतरा मजूर नहीं। 'डेड सेल्स' शरीर में पचते नहीं। नये 'प्रेन्यूल' बनने ही चाहिए।

मेरी शका भव पक्की हो गई है कि पढ़ा-लिखा वर्ग सच्चे मानी में पुस्तकी पढ़ा-लिखा वर्ग माने में ईमानदार नहीं है। वह कतई नहीं चाहता कि कोई नया वर्ग पढ़ जाए क्योंकि वह एक जगह आसन जमाकर बैठा हुआ है और वह वहाँ से हटना नहीं चाहता। आज पढ़े-लिखे लोग कौन हैं? वे ही मुसीबतदा लोग, जिनके बाप-दादे अंग्रेजों, मुगलों, मराठों वगैरह के जमानों में कलम घिसते रहे, कभी घरधी में, फारसी में, अंग्रेजी में। सो मेरा कहने का मतलब है कि यह पढ़ा-लिखा वर्ग पीढ़ी दरपीढ़ी से चले आ रहे अंगपढी को तथा उनकी सत्तान को पढ़ाना-लिखाना तो दूर, उनही लंगडी मार देगा। यह बात आज की नहीं है, युगों से चली आ रही है। किसी भी युग में विद्या को सीधा व सादा सरल नहीं होने दिया बल्कि उसे 'अन्तर-मन्तर' बना दिया। सीधी-सादी बात को घुमावदार व पेचदार बनाया गया। इसे पढ़े-लिखे लोगों की साजिश ही कहना चाहिए कि जगह-जगह पढ़ाई में पेच डाल दिया गया। बोलो कुछ, लिखो कुछ। सुनते हैं कि अंग्रेजी में हिज्जे और उच्चारण में बड़ी गड़बड़ है। आलिरयह एक साजिश है जो हर पढ़ा-लिखा आदमी करता है और करता आया है। कहते हैं कि डाक्टर लोग अपने नुस्खों में पानी जैसी चीज को भी अपनी साकेतिक भाषा में लिखेंगे। आप ही बताइए यह एक 'ट्रिक' नहीं तो क्या है?

आप लोग क्या ही महानुभूति दर्शन करके रहते हैं गांधी के प्रति। वेगने गांधी की मरणा दे कि आपने बंदकार कोई समझ नहीं है हमारा, हम जहाँ में। मगर, बात को सोचो विशेष बात या कुटिल बात को साफ नजर आने लगता है कि आप लोग हमें क्यों 'लोक' (बन्धक) गिटाते हैं। गांधी महानुभूति स्वयं लगती है। भूरा रोटी में भागती है न कि रोटी की बात में। क्या आपने सुना हुआ है कि हमें महानुभूति नहीं वाशिंग, हमें वाशिंग माझे सारी, निरकल। देश की योजनाओं में, राज में, गांधी में, भागी कार्यक्रम में। हमारा हाथ ही, उन तमाम व्यवस्थाओं में जो हम देश में लागू हो, तमाम योजनाओं और प्रायोजनाओं में हमारी पूछ हो जो हम देश के लोगों के लिए बनी है या बनाई जा रही है। हम भागीदार हों। तमाजवीन बनकर न रहेंगे और न ऐसी स्थिति वर्दास्त करेंगे। परन्तु क्या नागर वर्ग नहीं माने में संवारों को अपने समकक्ष लाने के लिए मानसिक रूप से, पूरी ईमानदारी से, ऐसा सोचता है? आपके उत्तर का तो मैं अनुमान नहीं लगा सकता, पर अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि गड़बड़ी यहाँ है। धार्मिक महानुभूति मौजूद है, पर इसके आगे उनकी मंशा नहीं। ईशा अल्लाह कुछ होता नहीं।

मैं हाल ही की एक ताजा बात सुनाता हूँ। कई दिन पहले हमारे यहाँ एक शिविर लगा। शिविर लगाने के पीछे इरादा था कि एक गोष्ठी हो जाए। संविधान में दिए गए मूल अधिकारों तथा निर्देशक तत्त्वों पर खुलकर बात हो। बात शुरू हुई। चर्चा होने लगी। बात वांसों ऊंची उछलने लगी। दुनिया-भर के देशों के संविधानों की बातें। बिना टांग-पूँछ की बातें। आसमान-पाताल एक ही गए। हम लोग उनका मुंह देखने लगे और ताकते रहे कि कोई काम की बातें कहे। शिविर कोई थूक उछलाने के लिए तो हुआ ही नहीं। आखिर हमसे रहा न गया और हममें से जेसाराम पूछ बैठ—

हमें इस देश के संविधान की बात बताओ, दुनिया बहुत बड़ी है। इसमें भी मोटी-मोटी बातें जिन्हें हम अंगुलियों के 'पोरों' पर रख सकें, गिन सकें एक, दो, तीन...। बात इतनी सी थी परन्तु बक्ता महोदय चुप, जैसे कि चलते हुए को लंगड़ी लगा दी हो। फिर कुछ देर बाद हकलाते हुए कहने लगे, "तुम संविधान की वारी-कियां नहीं समझते, तुम बात सुनो। अगर तुम्हारी समझ में न आए तो चुप रहो, बेकार बोलने से बक्ता के काम में रुकावट पड़ती है।" पास में बैठी हुई विद्वत्

मंडली ने भी सिरं हिलाकर बात की ताईद कर दी। खैर, कई कारण और भी हो सकते हैं, परन्तु विद्वानों की मण्डली एक पूर्वग्रह से ग्रसित दिखाई पड़ी। उनके हाव-भावों से, मुखमुद्राओं से साफ भ्रमकता था कि देहाती भी एकतरह की भेद-व्यक्रिया हैं जिन्हें मिमियाने के सिवाय कुछ नहीं आता। भेद-व्यक्रिया फिर सविधान की बरीकियाँ कैसे समझ सकती हैं? मुझे यकता महोदय पर दया आई और गुस्सा भी। दया तो इस बात पर कि यह पढा-लिखा आदमी बिना कागज बोल नहीं सकता एक शब्द भी, और ऊपर से यह हेरुड़ी। गुस्सा इस बात पर कि इस प्रकार के पढे-लिखे मूखों के हाथ में देश की वागडोर दे दी गई तो भगवान ही इस देश का मालिक।

अध्यक्ष ने बात का मुह मोड़ने के लिए एक नया सवाल फेंका—

“भाष ही बताइए भाष इन चर्चाओं से क्या समझे?”

जिसाराम तो बैठ गया। मुझे खडा होना पड़ा। मैंने निवेदन किया कि यह सविधान हमारी नई रामायण या गीता है। पुराने जमाने में लोग रामायण या गीता की शपथ राकर बात कहते थे और आज हमारे विधायक व सांसद इसके हाथ लगाकर हलफ उठाते हैं। परं बस इतना-सा है। गीता भगवान ने बनाई और सविधान बनाया इस देश के लोगों ने। भगवान की बनाई हुई चीज में तर्मीम नहीं होती परन्तु आदमी की बनाई हुई चीज में तर्मीम भी हो सकती है और तामीर भी। शर्त बस इतनी-सी है कि इस देश के लोगों द्वारा इस देश के लोगों के लिए बनाया गया दस्तूर सौ में से इक्कावन आदमियों के हितों का जामिन हो। अगर यह शर्त पूरी नहीं होती तो सविधान में संशोधन होगा। इस सविधान के अन्तर्गत बना हुआ हर कानून यह शर्त पूरी करेगा वना बह कानून गनन होगा। यही बात मूलरूप में मौजूद होनी चाहिए। इन मौलिक अधिकारों में तथा निर्दे-दाक तर्कों में। मेरी तो यही कसौटी है। यही बात सुपता हू इससंविधान की हर धारा में, हर शब्द में, हालांकि पठना मुझे नहीं आता।” यह कहकर मैं बैठ गया। कुछ अस्पष्ट-सी बानाफूसी बनी। मेरी दलील में दात-भात में मूमनचन्द नजर आया।

संविधान के पढित मेरी बात पचा नहीं सके। बात भी जायज है। वे लोग तो संविधान के पूर्णविराम और छोटे-से नुक्तों पर धंटों बहस कर सकते हैं और मून में धे कमाई भी इसी बात को खाते हैं। मेरी बात तो उन्हें मून में भट्ट नजर

आयी । एक गण्डवन बड़े बड़े, 'शुभ' मंत्रिपाल की भाषा ही नहीं समझने और न यह तुम्हारे बग की बात है । समझने भी रहा न गया और मुँह से निकल गया, तुम मंत्रिपाल के प्राण नहीं समझो । इसकी रक्त तुम्हारे हाथ नहीं आई । छोटी मोटी तू-तू में-में भी हुई पर बात समझ हुई । निविर गणन ।

मेरे निगमन का मानव बग इतना-ना ही रहा है कि आज हमारे और आपके बीच आई है । एक अन्याय की स्थिति या गई है या नाही गई, दाने-दाने । भद्र और अभद्र के बीच । गांव और शहर के बीच ।

प्रोफेसर साहब, हमारी भाषा गीगी-भायी परन्तु आप लोग मीची-सायी बात समझने के आयी नहीं बल्कि गीगी-भायी चीज को चमत्कारदार बना देते हैं जिसके कारण हम लोगों का मिर चकराने लगता है । गहो है यह विभाजन रस्ता जो आप को और हमें एक-दूसरे से अलग करती है ।

प्रोफेसर साहब, मुझे दर है कि यह स्थिति चीज ही न सुवारी गई तो हालत खतरनाक हो जाएगी । दोनों के बीच का सम्पर्कभूज टूट जाएगा । दो बगों की दो भाषाएं हो जाएंगी । एक-दूसरे के लिए अजनबी । फिर साथ कैसे चलेगा ? निवहि नहीं होगा ।

सुनते हैं कि ऐसी स्थिति पहली बार ही नहीं हुई है । पुराने जमाने में भी कई बार ऐसा हुआ है । एक बार की बात बतलाते हैं । हालात भी आज जैसे थे । बड़े-बड़े लोग थे । सारे शास्त्र कण्ठस्थ थे, परन्तु ये सभी के सभी स्वार्थी और दम्भी । साधारण की बात न तो सुनते थे और न समझने की कोशिश करते थे । इन सब चीजों का नतीजा यह हुआ कि अभद्र लोग भद्र लोगों से अलग-थलग हो गए ।

ऐसी हालत में, एक आदमी आया और उनकी ही भाषा में ऐलान किया कि अपने आस-पास के लोगों को तड़पता हुआ छोड़कर स्वर्ग की तमन्ना करना भी पाप है । मुझे ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिए । उसने ये सारी बातें कहीं 'जनभाखा' में जो सबकी समझ में आ गई । जनता उसके पीछे हो गई । कारण केवल इतना ही था कि जनता पंडित लोगों से बुरी तरह से कट चुकी थी । ये पंडित लोग बात का इतना महीन सूत निकालते थे कि प्रथम तो 'सूत' ही नजर नहीं आता था और अगर यह 'सूत' पकड़ में आ जाता तो धागा टूट जाता । कभी-कभी उलझ भी जाता । बेचारा साधारण आदमी 'रास्ता चूक' और दिक्भ्रमित ।

लोगों ने कई बार सामूहिक रूप से कहा भी बतलाते हैं कि शास्त्रों तथा

उपनिषदों की बातें हमारी समझ में नहीं आती हैं, हमें उस बोली में समझाओ जो हम समझते हैं। इनकी टीका करो 'जनभाषा' में। परन्तु जो साधारण छात्रों की मुने वह पंडित कैसा? उन्होंने टीका को मूल से दुस्रह बना दिया। वे तो ऊपर की धोर ही देखते रहे, चाद-सितारों की धोर। प्रहों की चाल-डान देखते रहे, ज्योतिष की बात करते रहे। टेढ़ी-भेड़ी लकीरें खींचते रहे, परन्तु कभी अपने पंरों के आस-पास देखने की कोशिश नहीं की।

परन्तु इस बार 'जनभाषा' में ऐलान करते हुए सुना, मानव-मान के दुखों की निवृत्ति का नुस्खा सुना तो उनकी समझ में आ गया कि निर्वाण क्या है, मोक्ष कहा है। लोग बिल्ला उठे, "यह तो बुद्ध है।" बहुत समझाया कि यह तो राज-कुमार सिद्धार्थ है, परन्तु कौन सुनता? वह तो बुद्ध ही रहा और सारे के सारे पंडित बुद्धू रहे।

प्रोफेसर साहब, यह क्या हुआ, कैसे हुआ? राजकुमार सिद्धार्थ को मरुत का जान न हो, जचने वाली बात नहीं। फिर यह 'जनभाषा' का माध्यम क्यों? राजकुमार सिद्धार्थ के विभाग में भी क्या बहुत कुछ इसी प्रकार के विचार और प्रतिक्रिया नहीं हुई होगी? तत्कालीन परिस्थितियों में मलगाव की स्थितियों से बचने के लिए, वगंभेद मिटाने के लिए क्या यह सब कुछ नहीं किया? बोधिवृत्त के नीचे और क्या ह्याल धाया होगा? राजकुमार सिद्धार्थ ने सवात कर दोहन किया और समाधान दूड लिया।

भगर आप इतने दूर नहीं जाना चाहते तो आप ले तो नानक, कबीर, ईशर आमा बगैरह को। उन्होंने भी बात की 'जनभाषा' में। लोगों की जमात उनके पीछे हो गई। लोगो ने बना दिया किसीको धोर तो, किसीको रैगम्बर। जब नानक-कबीर बगैरह ने बात की तो दिल खोलकर बात की, बिना किसी जग-सपेट के। ततोजा यह हुआ कि उनकी बात लोगों के गले में उतर गई। उनकी बात 'बाणी' बन गई, शब्द बन गई। उनकी 'बाणी' व 'शब्द' भजनों में गाए जाने लगे। आज भी संकड़ों वर्षों बाद हम लोग उनकी बाणी बोलने हैं, 'शब्द' दोहराते हैं। भजन गाते हैं तन्मयता के साथ। इममें रहस्य की बात नहीं। बात सीधी-सी है। दिल से निकले हुए 'शब्द' और 'बाणी' सीधे दिल में घुस जाते हैं। इतनी-सी बात है।

तो, प्रोफेसर साहब, मेरा तो कहना यही है कि भगर आप सचमुच किंचि

सागरमंथ की लहरों में है। खोद गहरे-गहरे से पाएँगे कि इन देवों के लोग देव-निर्माण के माला-माल में लहरों के साथ-साथ भाग लें तो आपकी अपना स्व-व्यवस्था होगा। कलावा में कुछ नहीं गया, विनाया में कुछ नहीं रखा है। कस्तूरी के नुंग की भाव है। हा, एक बात छोड़ स्पष्ट करनी होगी। यदि आप हम के लिए कलावा का सम्पन्न जाना चाहते हैं तो बात दूसरी है, हमें कुछ नहीं बड़ना है। लोग आपको के नाम से बड़ा मानते हैं पर असलियत में वे अपने परिवार को ही गोपाला समझते हैं। यह तो हुई मंचे की बात, केवल चाहे कुछ भी हो। आप भी हज कर आश्चर्यता आपकी रोटी मेंको रहिए; परन्तु अगर आपका खरा भी विरायदाना लगाय है हमसे, तो बात करिए हमसे। आप हमारी तरफ मुंह करिए, पीठ नहीं।

प्रोफेसर साहय, मैंने अपने दिव्य की बातें कही हैं, आपसे। सहज भाव से, जैसा कि मैंने महसूस किया। आप विश्वास रहिए, मैं न तो किसीके चक्कर में हूँ और न मैंने कोई नया 'भैरव' ही बनाया है। न भैरी प्रेरणा किसी रंग की किताब से जागी है। वपत का लगनजा देगता हूँ। वेमतालव की देरी से बात विगड़ने का डर है। अभी तो 'वेटी वाप के घर' ही है, परन्तु पासा पलटने में देर भी नहीं लगा करती और न वपत ने कभी ठहरकर कहीं विश्राम ही किया है।

आपके पत्र की प्रतीक्षा में।

राम-राम के साथ।

भवन्निष्ठ
दी वेगाराम
वकलम दीर्घचक्षु

आलू की सम्यता

बात चली कि चलने लगी। बात में से बात निकलने लगती है। बात की चाल भी ग्रहों की चाल की तरह अजीब होती है। कभी-कभी तो जरा-सी ही चली कि बकरी होकर दंगल के दलदल में फंस जाती है। बात बन जाती है नौ मण की, भटक जाती है। इसके विपरीत कभी-कभी बात उड़ती हुई इतनी द्रुत गति से चलती है कि उसके सामने मुपर सेनिक जेंट भी क्या करे। उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक एक ही छलांग में।

हा, तो बात चल रही थी, धामुनिकता की। मोडनिटी की। व्यवहार में तथा विचार में। मोटा सवाल था, धाखिर धामुनिक किसको माना जाए? धामुनिकता का मापदण्ड क्या हो? व्यवहार में तो यह देखने में आया कि लोग धामुनिकता का मुछौटा लगाये रहते हैं और उस मुछौटे के नीचे छुपा रहता है उनका बोदापन। जरा-सा भी कुरेदा तो फिर उसका भोंडापन निकल आता है। डबने के लिए संस्कृति की खदूर पास में रहनी चाहिए। प्लास्टिक सर्जरी सब क्षेत्र में छा गई है।

“तो आपके हिसाब से,” एक सज्जन कहने लगे, “धामुनिकता का मापदण्ड मुंह बोलता हुआ हो। आपके हिसाब से न उसके विरूपण की आवश्यकता रहे और न किसी प्रकार की बहस की गुजाइश।”

“ऐसा मापदण्ड तो मैं बताए देता हूँ,” मेरे पास में बाईं तरफ बैठे हुए सज्जन कहने लगे, “धामुनिकता का मापदण्ड यह है कि कौन कितना धानू पैदा करता है तथा कितना धानू खाता है। यह बात व्यक्ति तथा देश दोनों के लिए लागू होती है।”

“यह तो बताइए कि यह आपके दिमाग की ही उपज है, या इसका कोई और भाषार भी है?” मेरे दाहिनी तरफ बैठे एक सज्जन बोध पड़े।

मनविम मृग । मरुती खायें खायें-जायें जायें तरह मृग मृग ।

'आप इसप्रश्न को क्या सोचेंगे ? जब मृ-इशेव भारत में आए थे तब उन्होंने एक सर्वप्रसिद्ध मंत्र में यह बात कही थी, और वह भी वास्तव जोर देकर । अपनी कृती के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं में आनु-उत्पादन के धातुओं से स्वयं की प्रकृति की सफाई का प्रतिपादन किया था ।'

सामांसी मरुजन ने अपनी कृती के पीछे मृ-इशेव के नाम की सील लगा दी ।

"वात जमी भी है जोर जंती भी है," मैंने भी अपनी बात मजसिब में फेंकी ।

कनाडा को ले लीजिए, वहाँ अन्धान्य देशों में लोग आलू उगाड़ने जाते हैं । हमारे देश से भी बहुत सारे लोग आलू उगाड़ने गए और वहाँ पर आवाद हो गए ।

"मृ-इशेव कोई अचोरिटी छोड़े ही हैं । उसकी मानते नहीं उसकी विरादरी के लोग भी । 'जात-पात' से बहिष्कृत को आप पेश कर रहे हैं, कमाल है ।"

मेरे दायें ओर से प्रतिक्रिया ।

आप तो सब जानें जब किसी वेदव्यासजी ने कहा हो, उपनिषद् में कहा गया हो, परन्तु बेचारे वेदव्यास जी के साथ दिक्कत यह थी कि उन्होंने तो आलू खाए ही नहीं थे । उन दिनों चावलों का चलन था, इसलिए चावल का जिक्र किया, और चावल से सम्बन्धता का प्रादुर्भाव हुआ । आगे चलकर चावल में भी यह देखा जाने लगा कि वह अक्षत हो । अगर अक्षत नहीं तो चावल नहीं । वस सारा जोर चावल से हटकर अक्षत भाग पर पड़ गया । जो अक्षत नहीं वह ग्राह्य नहीं । चाहे चावल या बीबी । अक्षत की शर्त अनिवार्य । यह धी चावल की सम्बन्धता का माप-दण्ड । खुदा-न-खास्ता अगर वेदव्यास जी वगैरह ने आलू की टिकिया वगैरह खाई हुई होती तो वे अष्टादश पुराण और ही तरह से लिख जाते । कोरा चावल खाकर तो कोई जिन्दा नहीं रह सकता । बेरी-बेरी का रोग हो जाता है, रतौंधी हो जाती है । वस यही बात है चावल की सम्बन्धता में । पुराण पढ़ते रहो, रतौंधी नहीं होगी तो फिर क्या होगी ?"

एक और प्रतिक्रिया ।

"इसका मतलब क्या यह समझा जाए कि आलू खाना आधुनिक होने का

सबूत है," मेरे मुह से निकल गया।

"इसमें क्या दो राय हो सकती है? जो देश जितना सम्य होना, वही भालू का उत्पादन उतना ही अधिक होगा। यही बात व्यक्ति पर लागू होती है। 'मल्टा मोडर्न' भ्रादमी भालू के सिवाय कुछ खाता ही नहीं, मेरा मतलब 'वेज डाइट' से है।" मेरा बामागी दोस्त कुछ और भी कहता कि मेरे मुह से निकल गया—

"केवल भालू ही भालू।"

"भालू को आप क्या समझते हैं? भालू से एक हजार प्रकार के व्यजन बन सकते हैं। भालू से खीर, परांठे, हलवा बगैरह न जाने कितनी ही चीजें बन जाती हैं।" भ्रावाज में कुछ गुस्सा था।

"पर वह तो भालू की उत्पादेयता की बात हुई, इसमें प्राधुनिकता कहा घुस गई?" मैंने दलील दे दी।

"दिवकत तो यही है कि आप लोग न तो समझते हैं और न समझने की कोशिश ही करते हैं। भालू सच्ची भी है और भ्रनाज भी है। इसको दोनों ही तरह से खाया जा सकता है। प्राधुनिकता की सबसे बड़ी कसौटी तो यही है कि चीज की 'मल्टी परपज' उपयोगिता हो। भालू में ये मारी विशेषताएँ हैं। इसको भ्रादमी और जानवर दोनों ही खा सकते हैं। मज्जाक की बात नहीं है, जरा गभीरता से सोचिए। भालू में एक और विशेषता है।"

"वह क्या?" मेरी जिज्ञासा को सब्र न रहा।

भालू में भ्रसोम क्षमता है विकास की और सम्बर्द्धन की। सुरसा को मात मिलती है। भालू एक छटाक में चार भी तुलते हैं और अकेला भालू चार किलो का भी हो सकता है। पृथ्वी के ग्रह पर विस्फोट की गति से बढ़ती हुई, जनसंख्या की समस्या का समाधान भी भालू-उत्पादन से ही सम्भव है। भ्राने वाले समय में इतनी जगह इस सिकुड़ती हुई धरती पर कहां रह जाएगी कि सच्ची और भ्रनाज दोनों ही अलग-अलग उगाए जाएं।

मुझे एक मज्जाक सूझा, "गांधीजी की ट्रेस्टीशिप व्यवस्था में कीड़ी को कण और हाथी को मण की व्यवस्था है। भालू की सम्मता में कीड़ी को छोटा भालू दिया जा सकता है और हाथी को बड़ा भालू। बस दिल जलने वाली स्थिति नहीं रहेगी। 'डोल सार्ह' भालू दे दिए जाएंगे। भ्राखिर, हम जो खोपड़ियाँ गिनने के भावी हैं, भालू गिनने लगेंगे। कोई दिक्कत नहीं।"

“आप लोग तो आन्दोलन-कार्य ही जान सकते सभे। आन्दू की प्रतिर फूड वेल्यू क्या है ?”

मेरे सारिने थोर देठे हुए मजदूर आदमी भुंभलाहट पर काबू न पा सके। उठन पड़े। “आपारे सामने समस्या है ‘फूड’ की। समस्या है मानी पेटों को भले की। जो पेट भव्य मिठे हुए माइसी को हवन कर सकते है, मनुष्य की घास को पना सकते है, उनका ‘फूड’ आसिय। ‘वेल्थू’ तो गोन है। आन्दू से बड़कर कोई और चीज नहीं। एक नया नारा ईकार हो सकता है। एक आदमी एक आन्दू। एक खासा-भजला नारा बन जाएगा।”

सारी मजदूर नारे के नाम से हंस पड़ी।

“आप हंसना चाहें तो हंसिए। आज की परिस्थितियों में लोगों को जब बात समझ में नहीं आनी तो वे अपनी प्रतिभियामें दो ही तरह से व्यक्त करते हैं, हंसकर या हूटिंग के द्वारा। आप भी ऐसा कर सकते हैं, परन्तु मेरा तो कहना है कि ‘एक आदमी, एक आन्दू’ के सिद्धांत को यदि अमली जामा पहनाया जाए तो खाद्यान्नों में ‘एडलटेशन’ की बीमारी भी पकड़ में आ सकती है, परन्तु आन्दू में तो आन्दू ही मिल सकता है।”

वामांगी दोस्त की मुसामुद्रा गंभीर थी।

“ये तो विलकुल नई जानकारीयां हैं जिनका पता तो शायद खुश्चेव को भी नहीं था।” एक उड़ता हुआ कमेण्ट।

“इसी वजह से तो उसे संशोधनवादी कहा गया। उसे ‘पेटो कल्चर’ की पूरी जानकारी नहीं थी।” दूसरा कमेण्ट।

“वात चल रही थी आन्दू की फूड वेल्यू की और उसके साथ चिपका दी गई अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति। वात चल रही थी खाद्य समस्या की और उसमें घुसेड़ दी गई राजनीति। कमाल है !” एक कोने में बैठे हुए सज्जन और अधिक मौन न रह सके।

“राजनीति भी एक फूड है, आप समझे नहीं।” पास बैठे हुए सज्जन उन्हें नई थीम समझाने लग गए।

“बड़ी अजीब वात है !” उनके गले वात उतर नहीं रही थी।

“अजीब-वजीब कुछ नहीं है। खाद्य-समस्या भी अपने-आपमें एक राजनैतिक समस्या है।”

“भाप बहना क्या चाहते हैं ?” उन्होंने गुराँकर उनकी आंखों में देखा । बात का मेन्सु सरकर एक कोने में चला गया और सभी के कान और आंखें उधर की ओर मुड़ गईं ।

“मैं कह नहीं रहा हूँ बल्कि भ्रजं कर रहा हूँ कि राजनीति से अलग किसी चीज का अस्तित्व ही नहीं । राजनीति का प्रवेश सब जगह है । जब लोग, तेन्दु पत्तों की बात करते हैं तो लोग समझते हैं कि बीड़ी की बात होगी । तेन्दु पत्तियों से केवल बीड़िया ही बघती हों ऐसी बात नहीं, उससे राजनीति भी बघती है । भ्रंणपट्टों में रहने वाला कोई व्यक्ति जब बीड़ी से घुस्रा निकालता है तो उस घुएं में राजनीति भी घुस्रा निकालती है । साधारण दही-बड़े व चाट खाने वाले को पता नहीं कि उबलते हुए तेल में राजनैतिक उबाल भी होता है । बड़ा तला जाने के पहले उम मूगफली के तेल में न जाने कितने राजनैतिक उबाल खाए हैं ? सो मेरी भ्रजं है कि क्या तेल, क्या मूगफली ? सभी में राजनीति घुसी हुई होती है । राजनैतिक जलवायु ठीक न हो तो सारी चीजें झनूकूल होने पर भी मूगफली उगेगी नहीं और यदि उग भी गई तो तेल नहीं निकलेगा । यह है मूगफली की राजनीति, वेदोल की राजनीति । गुड, शक्कर में भी राजनीति लिपटी रहती है । कई मन्त्रियों भनभनाती रहती हैं और कभी-कभी फंम भी जाती हैं । राजनीति कभी सड़क पर चीखती है तो कभी ससद् में गुंजती है । कबीरदास जो तो देवकत ही मर गए वना ‘माया महाठगिनी हम जानी’ के बजाय कुछ और ही लिखते ।”

बात पूरी भी न हुई थी कि मजलिस बिल्ला उठी । “बूब, बूब !”

परन्तु भालू की राजनीति का क्या हुआ ? मेरी जिज्ञासा बोल उठी ।

“भालू की राजनीति बिलकुल जरा भिन्न होती है । भालू जमीन के अन्दर ही पनपता है और अन्दर ही अन्दर बढ़ता है । इसका मतलब यह हुआ कि सारी की सारी प्रक्रियाएँ अण्डर ग्राउण्ड ही होती हैं ।” मेरा पड़ोसी बोला ।

“और ?” मैं उसके मुँह की तरफ देखने लगता हूँ ।

“और क्या ? शास्त्रों में लिखा है कि जैसा साम्रो धन्य, वैसा होवे मन । भालू खाने वाले के मनोविकार व अन्य यीमारिया भी अन्दर ही अन्दर चलती हैं, पूरी तरह से बढ़ने पर ही सतह पर लाई जाती है ।”

“जैसे—” मेरे मुँह से निकल गया ।

जैसे कि आन्तरिक घुटन, स्नायविक दबाव, कुण्ठाएं बर्गरह जो कि भालू की

सरत धमर ही धमर सती लागे। ये भीमारिया भी धामनिका के भावत
हे। धामु और धमर सम्भत गही हे जो धाम और धमर का हे।

"धामु धमर ?" में धामनी धमर को धमर गही गता।

"धमर भी हे, फोल्ड स्टोरेज में धमर।"

"धमर—"

"धमर यह होगा कि धामु धमरने नभेगा, मधुन्य होगी। धमरकोधमर हेन
और धमरमारिया धमरगी। धामु धमर में धमर होता हे।" धमर दोस्त ने धमर
धमरका धमर ही।

"धमर धमर गमर में धा गया कि धामुनिक धमरता धामु की धमरता हे जो
कि फोल्ड स्टोरेज के धमरने धमरता जा सकती हे।" धमरने स्वीकार किया।

"धमर धामु धमर धामु।" धमरनिक धमर पती।

आमने सामने

राज के युग में जब कोई नारा निकलता है तो नगाडा बजता है। नगाड़े पर धोट के साथ ऐसान होना है "मलेरिया को समूत नष्ट करो, मच्छरों को भगा दो।" "बीमारिया हटाओ, मकियाँ को मार भगाओ।" "भूख की समस्या को दूर करो, चूहे भगाओ।"

... "शिक्षा हटाओ, घन्घविश्वासाँ को मार भगाओ।"

एक खासे-घन्घे अधिकारी ने घनपढ लोगों की एक सभा बुला सी और उद्बोधन के स्वर में कहने लगे कि हर व्यक्तिको, चाहे स्त्री हो या पुरुष, शिक्षित होना चाहिए। शिक्षा जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक है। शिक्षा से जीवन-स्तर ऊँचा उठता है, शिक्षा का महत्व व...

घनपढ़ों में से एक अघेड़ व्यक्ति अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ गढ़ा हुआ और अधिकारी रुक गए। उमर कोई पचास के ऊपर ही होनी चाहिए। दाढ़ी रुपये में धारह घाने वाली जैती हो गई थी। बड़े अडब से बोला : "मार जो शिक्षा का महत्व व माहात्म्य सुनाने जा रहे है, वह तो हमारे लिए नई चीज नहीं है क्योंकि माहात्म्य सुनने के तो हमारे कान धादी हो चुके है। औरतें काठिक माहात्म्य सुनती हैं। अब-अब काठिक का महीना घाना है, काठिक माहात्म्य गुरु हो जाता है, वही पाठ, वही कथा। हा, 'बाचने वाला' 'बाध' (बाधन) देता है, सुनने वाला सुन लेता है। काठिक बीर जाता है, मगयिर घा जाता है। कथा-बाचन अपनी पोथी फिर से घपने घरते में रग देता है। पूरे ग्यारह महीने उनको कोई 'तिप नहीं बाँचना' (राज नहों लेता)। इस बीच में घनर दोमर घा घनके तो दूसरी पात है। परन्तु मून में मीरी मका यह है और जकार चाहना 'हा' या 'ना' में।"

सभी अतपढ़ों की जमात हंस पड़ी।

" क्या कथावाचक मूल में एक शोषणाश्रितता के अभावता किसी तरह की रचना कथा में रचाना है ? क्या वह एक माहात्म्य से किसी प्रकार अनुमानित व प्रभावित है ? सोचें और पढ़ें, क्या आपको आराम है ?

" अगर कथावाचक की आराम होती तो वह अपनी कथा को निरन्तर में, नये रूप में ऐसे रचना कि श्रोताओं के दिनों में भी रचिन पेश करवा देता।

" अगर श्रोताओं की रचिन ही तो वे कथावाचक के 'गले पड़' जाते और उसे कथा 'वाचने' को दिवस कर देते। कथावाचक की क्या मजाल कि वह ग्यारह महीने तक कथा का नाम ही न ले ? मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि अगर श्रोताओं में से एक भी उस कथा या कथावाचक में दिवस प्रभावित हुआ होता तो वह मुद कथावाचक बन जाता और उन 'प्रोफेशनल' कथावाचक को भगा देता। परन्तु मूल में बात इतनी-सी है कि कथावाचक कथा में रचिन नहीं रचाना। उसकी रचि है तो उस 'पढ़ावे' में जो कथावाचक के दौरान उसे मिलता है। अगर कथावाचक को बीच ही में पता लग जाए या वह महसूस करने लगे कि फालतू में 'गोड़ा घिसन' है तो वह कासिक मास की समाप्ति के पहले ही कथा-समाप्ति की घोषणा कर देगा। दरी उठाने वाले अपनी दरियां व जाजमें उठाकर चल देंगे। हमने तो इस प्रकार के 'माहात्म्य' व महत्त्व की बातें सुनी है। अब आप कोई नई बातें कहना चाहें तो कहें। "

अनपढ़ लोगों की सभा में एक चुलबुलाहट ब्रा गई। एक प्रकार का जोश दृष्टिगोचर होने लगा। कुछ दादें मिलने लगीं।

"वाह रे 'वेगा' ताऊ। बात 'मरम' की कही है।"

एक प्रकार की सामूहिक अभिव्यक्ति। सभी अनपढ़ों की मुख-मुद्रा से ऐसा आभास हो रहा था और वे सभी इतने खुश थे जैसे कि चौधरी वेगाराम को, जिसने जमाने के कई तेवर देखे हैं, कोई डाक्टरेट मिलने जा रही है।

वक्ता महोदय ने कभी अन्दाज ही नहीं लगाया था कि शहरी शब्दावलि में अनपढ़ ग्रामीणों की सभा में भी कोई 'भाटा' फेंक सकता है। वह कुछ देर तो श्रवाक् रहे, परन्तु शीघ्र ही अपने को संभाल लिया और बोले, "भाई वेगाराम, तुम कहना क्या चाहते हो ? मैं कोई कथा 'वाचने' नहीं आया हूँ। तुम गांव वालों से यही तो दिक्कत है कि तुम बात समझते नहीं और न समझने की कोशिश करते हो।"

"इस बात को घाप यो बहो," बेगाराम ने बात 'भय' ली और बहना जारी रखा, 'गांव का घादमी बात मूष लेता है, बात उसकी समझ में चाहे नहीं घाती हो। हर जानवर व हर धनपड़ घादमी की सूघने की दक्षिण नहीं मरती। वह सोम्य व दुग्मन का फकं मूषकर पता लगाता है, समझकर नहीं। परन्तु ज्यो-ज्यो घादमी पढ़ता जाता है, उसकी मूषने की दक्षिण सोप होने लगती है।"

मैं घुपघाप देगता रहा, एक घसमान दगल, दो व्यक्तियों के बीच। एक तरफ तो यह व्यक्ति जो एक बहुत बड़े दफतर में बैठता है, कार में चढ़कर घाता है। गर्मी में कूलर लगे हुए कमरे में बैठकर 'बेगाराम' की समस्याओं के बारे में सोचना रहता है। 'बेगाराम' की समस्याएं क्या हो सकती हैं इसके बारे में किताब खोमता है। फिर किताब खोलता है, समाधान पढ़ता है, समस्याएं कैसे सुलझने-उलझने लगती हैं।

बेगाराम की समस्याएं 'वेगी' सुलझें, इस मकसद से वह कनाडा जाता है, घाकंटिक वृत्त में रहने वाले लोगों से पूछता है कि बेगाराम की समस्या का निदान बताओ। 'बेगाराम' सोनिधर तो मर गया और उसकी समस्याएं उसके साथ ही सती हो गईं। अब इस लये बेगाराम की समस्या। बेगाराम जुनिधरन कई हो गए। फिर जुनिधरन के कई जुनिधरन हो गए। समस्याएं सुलझनी चाहिए।

बेगाराम की समस्या के लिए यह इन्वैण्ड गया, रसेल रिपोर्ट पढो। जर्मनी गया। घुनेम्को से बात की। अगर कहीं चूक हुई तो बस इतनी-सी कि उम्ने 'बेगाराम' से बात नहीं की। बेगाराम की समस्या के लिए तो सात ममूद्र पार तक की खाक छान सकता है, परन्तु 'बेगाराम' से क्या बात करे? एक मूलभूत दिक्कत है। एक दीवार है। बेगाराम सूघता है, समझता नहीं। उसके पास 'इंस्टिक्ट' है, 'इन्टेलैक्ट' नहीं। उसकी व्यवहार-पद्धति 'इंस्टिक्टिव' है। प्रोफेसर साह्य जानते हैं कि इसी घाघार पर तो जानवर चलते हैं। बात सही भी है। बेगाराम की बिरादरी में घादमी और जानवर दोनों ही घाते हैं। उसने अपनी गाय, बैल, ऊट, भ्रौंम की भी पारिवारिक सदस्य का रूप दे रखा है। उसकी खाट के पास ही राहो रहती है उसकी गाय, जो कभी प्यार का प्रदर्शन करने के लिए उसकी हथेली को चाटने लगती है।

मैं सोचने लगा। प्रोफेसर सायद कुतुबमीनार पर खड़ा होकर बात कर रहा है और उस ऊंवाई पर खड़ा होने के कारण जमीन पर खड़े हुए बेगाराम

भी समझ पाए उसे मही ह्वन में दिखाई नहीं देती और जब वह दूरकोन लगाकर देखता है तब उसे एकसाय मही दिखाता नहीं। यह धामान की कठिन मनन सेवा है और कठिन की धामान ।

मैं गरी जा रहा हूँ। क्या प्रोफेसर और वेगाराम में कोई 'आमलोग' है। वेगाराम की आदमी की हूँ नहीं। क्या वेगाराम की बात, उनकी अनुभूति की तीव्रता प्राकृतिक मान्यता का सुनाई पड़ती है? सुनने के बाद मनुष्य की प्रकृति भी होती है। दोनों ही जातों में बातें आती हैं। उनके बीच क्या 'अन्तर-वेद' की व्यापकता नहीं है? मैं मनुष्यता के साथ योग्यता की कोशिश करता हूँ कि इसी बीच में तार-टूट जाता है जब प्रोफेसर माह्रा और वेगाराम के सम्वाद का 'वाल्सू' गुप्त रूप हो जाता है। "तुम क्या कहना चाहते हो, वेगाराम? प्राणित तुम्हारी बात क्या दो टूक शब्दों में नहीं कहनी जा सकती है?" प्रोफेसर बोले।

"यापविलकुल ठीक कहते हैं, परन्तु यह समस्या तो उन लोगों की है जो अपने आपकी पढ़ा-लिखा कहते हैं। पढ़े-लिखे आदमी को या तो बात कहनी नहीं आती या जान-बूझकर वह अपने मतलब के लिए शब्दों का जाल फैला देता है। चलो, मैं अपनी बात दो टूक शब्दों में कह देता हूँ परन्तु इस उम्मीद के साथ कि आपका जवाब भी दो टूक शब्दों में हो। मेरा सवाल है : एक आदमी को कितना साक्षर होना चाहिए और कितना शिक्षित?"

सभी अनपढ़ों की टोली एकदमगम्भीर। उन्होंने सूँघकर पता लगा लिया कि बात हंसी की नहीं है।

"तुम्हारा मतलब मैं समझा नहीं भाई वेगाराम।" प्रोफेसर ने कहा।

"प्रोफेसर साहब दिक्कत यहाँ है और यही है। चलो, मैं उदाहरण देकर बात समझाता हूँ।"

"कुछ दिन पहले यहाँ एक डाक्टर साहब आए थे और समझाने लगे कि आदमी को नीरोग रहने के लिए इतनी 'कैलोरी' चाहिए। हमने पूछा कि यह कैलोरी कहाँ मिलती है, तो कहने लगा कि कैलोरी अलग-अलग मात्रा में हरेक चीज में मिलती है। दाल में, सब्जी में, गेहूँ में, अण्डे में, दूध में, दही में आदि। पूरी मात्रा में कैलोरी प्राप्त करने के लिए दाल खाओ, दूध पीओ, सब्जी खाओ कि कुल मिलाकर कैलोरी का टोटल पूरा हो जाए।

"हमने सवाल किया कि अगर कुछ कमी-वैसी रह जाए तो ?

“डाक्टर ने समझाया कि शरीर को पूरा भाँटा नहीं दिया तो तुम्हारे घात ऊन्ही टूट सकते हैं, जोहो में ददें घा सकता है, दम फूल सकता है और दुनिया से भी समय से पहले जाना पट सकता है। सोच लो, समझ लो डाक्टर ने बिना चम्मच ही घात हमारे गले स्तार दी। यह तो हुई बात। हरेक मादमी की समझ में आ गई कि बोरा घावक खाना खाने से खाली नहीं। फोरी चीनी खाकर कोई जी नहीं सकता। हम समझ गए कि शरीर की कैलोरी का टोटल पूरा करना है, वनां मनरा है। खँगेही करो, दाल खाकर, दूध पीकर, रोटी खाकर। अगर इसका हिसाब-चुक्ता नहीं गिजा लो वन्न तो 'वनिये' की तरह पुरानी बाकी निकालकर बोभ बढ़ा देगा। पर छुटवा देगा। वनिये का भी हिसाब चुक्ता रहना चाहिए, वेंत ही इस शरीर-रूपी वनिये का भी हिसाब पूरा रखना चाहिए। वनां अस्पताल जाओ, दवाइयां खाओ, लाठ सेवो। यह ब्याज गहगा पड़ेगा, यह वान भासानी से समझ में आ जाती है। लेकिन घाप लोग भापण भाड़ देते हैं, परन्तु दो टूक दान्दो में क्यों नहीं बताते कि हमें कितना साधार होना चाहिए, उसका कोई नाप-बोल भी है कि नहीं? अगर कोई साधार ही गया तो उसमें क्या कर्क पड़ेगा? क्या साधार हुए बिना कोई सिद्धित नहीं हो सकता है? क्या केवल नाम-मात्र लिखना सीम गया लो कोई 'बैतरणी' पार हो गया?”

शारी की शारी सभा बेगाराम की बात सुन रही थी वही तन्मयता से। धन-पद बेगाराम एक पदे हुए की बोलती बन्द कर रहा था।

बेगाराम को शान्त रहने व अपनी जगह पर बैठने का संकेत देते हुए प्रोफेसर साहब कहने लगे -

“तुम्हारी बात से सहमत हूँ और इसीलिए ये विभिन्न प्रकार की योजनाएं बनाई जा रही हैं और ये केन्द्र खोले जा रहे हैं। घाप इन केन्द्रों के सञ्चालन में मदद करो। अध्यापक जो पढ़ाने आएँ उनसे सहयोग करो। समूल निरक्षरता-निवारण करने की योजना है। घाप सब लोगों के गहमोग से ही तो हम सब मिलकर इस महान कार्य का सम्पादन कर सकते हैं।

“मैं क्यादा तो नहीं बहूगा क्योंकि आजकल लोग काम करना तो नहीं जानते परन्तु काट करना जानते हैं। मैं बिना मतलब की बहस नहीं करूँगा। परन्तु एक बात कहूँगा।

“घाप देखिए, इस गाव में (ऐसा ही अन्य गावों में) सभी लोगों ने ऊँटगाड़ी

शोर मचाती के आवाज के चक्के मचा सकते है, पुराने लकड़ी के पट्टि मस। मेरुपाई उहाइ नाउ चक्के मच ही नाहे पुराने चक्के मे कती लपटा मही है। परन्तु किमीमे चक्के तो मही कि लपटी माही मे पुराने राज के पाटनी के चक्के लपटा सी।”

“ मुझे बताइए तो, उन चक्के के चक्की की मरामत किमीमे की ? कोई भी मोचना ही, कोई मरि नाउ ही, यह सब सब ही मरानी है जबकि इसी उपायका मरामत मे आ जाए। लोगों के मरी उर आए।

“ ये प्रीड क्या पढ़ेंगे ? आप जानते ही कि ये पढ़ें, यह कलम है, यह दवात है, यह नोट है। ये चीजें तो उमने बहुत पढ़ने देना सी थी। प्रीड तो यह बहुत बन-काना बान लगती है। पढ़ाने जाना बचना नदना है। जब यह देनाता है कि पढ़ाने वाले अध्यापक को चालीस रुपया मिलता है तो उसके मानस में एक प्रतिक्रिया जागती है। वह प्रतिक्रिया होती है रहम की, दया की, दया की उस व्यक्ति की विवशता की जो ४० रुपये महीने की प्राप्ति के लिए अध्यापक का मुखौटा लगाकर, अपने महीने केहरे को छुपाकर, अपनी आर्थिक मजदूरियों पर पर्दा डालकर, प्रीडों को पढ़ाने का स्वांग करता है।

“ किसी भी अध्यापक के लिए आवश्यक है कि पढ़ने वालों के दिलों में अपने अध्यापक के प्रति श्रद्धा के भाव जागृत हों, पढ़ाने वाला अनुकरणीय हो, उसके जीवन में कुछ जीवनदर्शन का आभास हो, परन्तु इसके विपरीत जब पढ़ाने वाले के प्रति श्रद्धा के बजाय रहम के भाव जागें, बिना कहे ही उसकी मजदूरियां व अभाव की स्थितियां मुखरित हों तो फिर उस अध्यापक से पढ़ने वाले क्या पढ़ेंगे ?

“ उनका निष्कर्ष होगा तो यही कि यह हमारा अध्यापक पढ़-लिखकर भी, इतना अभावग्रस्त व आर्थिक दृष्टि से इतना बेवस है कि वह चालीस रुपये में अपनी मजदूरी बेच रहा है। हर प्रीड जानता है कि मजदूरी मजदूरी ही होती है, चाहे चेजे पर जाए, चाहे मिट्टी खोदे, चाहे पढ़ाने जाए। मजदूरी के पीछे मजदूरी होती है, सेवाभाव नहीं, इसी रहम के पीछे, वह शिकायत नहीं करता कि अध्यापक निरन्तर आता है कि नहीं।

“ केन्द्र कागज में चलता है, परन्तु कोई देहाती, कोई प्रीड शिकायत नहीं करता और अगर कोई अधिकारी पूछे तो भी इन्कार कर जाता है। क्यों ?

कारण के लिए दूर नहीं जाना पड़ता। उसके खून में एक बात चली भा रही है कि किसीके पेट पर लात मत मारो। कोई पल रहा है तो पलने दो। पेट पर लात मारने से पाप लगता है।

“यह है एक स्थिति, सही स्थिति अन्धा अन्धों को रास्ता दिखा रहा है। बोलो प्रोफेसर साहब ! यह है न कार्तिक माहात्म्य। सही चित्रण।

“अगर आप जानते नहीं तो फिर कनाडा जाइए, कारण ढूँढकर आइए। अगर जानते हुए भी अनजान बने हुए हैं तो आप अपना कार्तिक-माहात्म्य बाबते जाइए।

“जागते हुए को कौन जगाए। परन्तु आप पर हम रहम नहीं खा सकते। आप और उस अध्यापक में फर्क उतना ही है जितना कि ‘वाटा’ में और साधारण मोची में।”

यह कहते हुए वेगाराम बैठ गया। वातावरण गम्भीर हो गया।

प्रोफेसर साहब भी गम्भीर। कुछ देर मौन रहने के बाद मौन भंग किया : “हो सकता है तुम ठीक कहते हो, वेगाराम। कोई है इलाज ? तुम्हारे सोचने का तरीका और, हमारा तरीका और। इन दो के बीच का फासला कैसे पाटा जाए ? एक दिशा में क्या बढ़ना सम्भव नहीं है, या लाइलाज है।”

मुझसे रहा न गया, मैं खड़ा हो गया, बोल पड़ा : “इलाज है। ऐसा इलाज जिसे वेगाराम भी समझ लेगा, परन्तु वेगाराम से पहले आपको समझना होगा। वेगाराम का दिल मजबूर है, दुरस्त भी है। वैसे ही उसके हाथ और इन्द्रियाँ भी।”

“तुम्हारे हिसाब से सारी गढ़बढ़ियाँ मुझमें हैं, क्या बकवास करते हो ?” प्रोफेसर झुल्ला पड़ा।

“नाराज न होइए, मेरी बात पर गौर फरमाइए। मैं जो भजें कर रहा हूँ, वह बात है, एक व्यवस्था की और आप उसे व्यक्तिगत स्तर पर ले रहे हैं। व्यक्तिगत स्तर पर सोचने का काम है वेगाराम का, आपका नहीं।”

प्रोफेसर ने मेरी तरफ देखा। रुख में तब्दीली नजर आई और मेरी हिम्मत हुई कि मैं बात बहूँ। बोला : “देखिए प्रोफेसर साहब, समस्या का समाधान बहुत सीधा-सा है, परन्तु खराबी हिम्मत की जरूरत है।”

“मतलब ?” प्रोफेसर साहब ने मेरी तरफ देखा।

'महात्मा यह है कि आप वेगाराम की बातें जैसा मजबूत, सुनकर व विचारित नहीं बना सकते, परन्तु आप वेगाराम बन सकते हैं। क्या यह सम्भव नहीं ?'

सोनेदार मातल भेरी : एक दिन अन्ततः मैं वेगारे स्पेस जैसे कि मैं पावन होने लगा हूँ। मुझे मन ही मन दली घाई, पर वेगारे पर नहीं प्राते वी और इसी तालवे में कहना जारी रखा : "इस देश में नागों-करोड़ों वेगाराम हैं और हजारों अज्ञेय। कम ही लोग, वे पढ़े-लिखे लोग। उनके पास शिक्षा है और विद्या के साथ मिलने वाली मनुकृति, एक मनुका का आचरण। इस अल-मनुक नर्म को 'दुःखद' कहते हैं। उनकी सामाजिकता है, उनके रहन-सहन का तरीका, मोचने का तरीका, सामाजिक स्तर पर मिलने-जुलने बर्गद का अपना 'एटीकेट' है और वे गारी की गारी चीजें वेगाराम के बस की बात नहीं। वेगाराम आपके यहां चाय पीने या भी जाए तो वह हेरत में फंम जाता है, वह आपकी और दोगा कि आप किस तरह चाय पीते हैं, किस तरह कप और प्लेट पकड़ते हैं, चीनी किस प्रकार मिलाते हैं। वेगाराम के तिर पर सौ तरह की मुगीबतें।

"परन्तु आप वेगाराम बन जाएं तो आपको कहां दिक्कत ! कहां अस्वा-भाविकता है।"

"अगर कोई लारेंस शरबका लारेंस बनकर रह सकता है, तो आप वेगाराम बन जाएं तो क्या बेजा है और आपका क्या घट जाएगा ? महात्मा गांधी ने वैरिस्ट्री पास की, सूट-बूट भी पहना, परन्तु जब वह वेगाराम से मिला तो गांधी को यह बात जंच गई कि अगर वेगाराम मेरा अजीब है तो मुझे भी वेगाराम की तरह रहना चाहिए। वेगाराम कमीज नहीं पहनता तो फिर मैं क्यों पहनूं ? वेगाराम घुटनों से नीचे तक धोती पहनने के लिए सक्षम नहीं है तो फिर मैं क्यों पहनूं ? वैरिस्टर मोहनदास वेगाराम से मिलकर उसके साथ एकरस हो गया। दोनों के दिलों की धड़कनों में एक 'सिम्पैथिटिक वाईब्रेशन' होने लगा। उसने वेगाराम के लिए सूट छोड़े, कोट छोड़े, अघनगै फकीर हो गया। वेगाराम बोला, 'तू तो महात्मा है !'

" 'नहीं वेगाराम, मैं तो दरिद्रनारायण हूँ, वेगाराम का ही रूप ।'

" बोलिए, यह क्या हुआ, यह क्या प्रक्रिया थी। गांधी की शिक्षा कहां गई,

उसकी 'कल्चर' का क्या हुआ ? है जवाब कोई आपके पास ?

" गांधी ने अपने-आपको 'डी-कल्चर' कर लिया । गांधी ने अपनी शिक्षा को 'डी-एन्क्वेयन' में बदल दिया। यही बात राजा जनक ने की। वह विदेह बन गया—विदेह यानी 'डी-एन्क्वैस्टम' ।

" धाज का मानव शिक्षा प्राप्त करके अपने-आपको 'डो-हू' मनाइज' कर रहा है—एक हृदयहीन, संवेदनविहीन प्राणी। वह एकाकी है। यन्त्रवत् रहता है, यन्त्रवत् जीता है। उसके पास मशीनें हैं। हाथ में बंधी हुई घड़ी की टिक-टिक तो वह सुन लेता है। हर घड़ी वह घड़ी की ओर देखा है, परन्तु अपने सभी भावभी के बचने की घड़कनें वह नहीं सुन सकता ।

" अगर इस देश के मे पढ़े-लिखे लोग, यह सोचने का गुनाह करें कि बेगाराम ने धारा उनका अस्तित्व है तो यह उनका भ्रम है। ये लोग बेगाराम से काफ़ी दूर धा चुके हैं। वह परायेपन की स्थिति अगर जल्दी ही नहीं सुधारी गई तो प्रोफेसर साहब, जड़े नहीं रहेंगे। और 'छिल्ले मूले नैव फलं न पुष्पम् ।'

' सो मेरा नम्र निवेदन है कि बेगाराम की साक्षर और शिक्षित करने का एक-मात्र तरीका यही है कि आप अपनी शिक्षा को भूलिए। कल्चर का लयादा दूर फेंककर अपनी कल्चर को भूलिए। बेगाराम के साथ एकाकार बनिए। उसकी आकांक्षाओं के साथ, उसके जानवरों के साथ, उसके माहीन के साथ। फिर बेगाराम का दिल देखिए, वह दिल और दिमाग खोलकर रप देगा। उनका भाई-भारा देखिए। वह आपको बेहद प्यार देगा—इतना प्यार कि आपकी प्यार का उभड़ता हुआ समुद्र नजर आएगा। वह आपकी हर बात मानेगा। फिर आप उसे बताइए कि उसकी गाय का दूध कैसे बड़ सकता है, उसके सेतो में घाल कैसे बड़ सकता है। तब बेगाराम का जोग देवना, वह गया कर सकता है—देश के लिए समाज के लिए। वह निरक्षर होते हुए पढ़ा-लिखा हो जाएगा ! वह अशिक्षित शिक्षित। और आप—शिक्षित अशिक्षित। अगर दोनों के दिमाग एक ही 'वेब लेंथ' पर काम करेंगे । "

प्रोफेसर की तरफ देखा—उसकी आँखें मेरी तरफ। लोगों की आँखें मेरी तरफ ।

मेरी आँखें बन्द हो गईं और बंद आँखों में देखता हूँ और खेतके अगला कुं-बेगाराम कितना साक्षर हो, कितना शिक्षित हो, कितना समझदार हो, उसकी

सुनों में पानी था रही सुन्न गयो, आजादी की रोगनी देते भी वीर महसूस करे। रोगनी की क्षिरमें उसके घर के आंगन में, उसके हर कोने में पहुँचें। अगर कोई बीज बाका आवाती है, रोगनी के बीज बीजार बनकर गड़ी हो जाती है तो उसने अपनी गमक घोर क्षिप्त भी हो कि बीजारे हटा दे। साधार होना जरूरी है, पर आगों के धामे इतिहास पुन जाया है। आचर, हैदरप्रती, रणजीतसिंह।

घांसे गोलता हूँ। यहाँ कोई नहीं था। केवल मैं।

